पूर्वांचल खेती

वर्ष : 32 जुलाई 2022 अंक : 07

प्रसार निदेशालय

आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय

कुमारगंज, अयोध्या 224 229 (उ.प्र.)

पूर्वांचल खेती

प्रसार निदेशालय

आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय

कुमारगंज, अयोध्या 224 229 (उ.प्र.)

पूर्वांचल खेती

वर्ष 32 | जुलाई 2022 | अंक 07

संरक्षक

डॉ. बिजेन्द्र सिंह

कुलपति

प्रधान सम्पादक

प्रो. ए. पी. राव

निदेशक प्रसार

तकनीकी सम्पादक

डॉ. आर. आर. सिंह

प्राध्यापक, मृदा विज्ञान

मो. नं. 9450938866

सम्पादक मण्डल

डॉ. वी. पी. चौधरी

सहायक प्राध्यापक, पादप रोग

डॉ. पंकज कुमार

सहायक प्राध्यापक, कीट विज्ञान

डॉ. अनिल कुमार

सहायक प्राध्यापक, प्रक्षेत्र प्रबन्ध

सम्पादक

उमेश पाठक

मोबाइल नं. 9415720306

इस पत्रिका में प्रकाशित लेख एवं विचार लेखक के निजी हैं। प्रकाशक/सम्पादक इसके लिए उत्तरदायी नहीं है

विषय सूची

मूंग की उन्नत खेती 01
संजीत कुमार एवं ए.पी. राव

सोयाबीन की उन्नत खेती : किसान भाईयों के लिए वरदान 04
नवनीत सिंह, अमन सिंह एवं निहारिका सिंह

धान में खरपतवार प्रबन्धन 05
विशाल सिंह एवं संजीव सिंह

अत्यधिक पैदावार एवं मृदा स्वास्थ हेतु अपनायेः हरी खाद 07
अंकिता गौतम, अखिल कुमार चौधरी एवं आर. आर. सिंह

मक्का में ''फॉल आर्मी वॉर्म'' का प्रकोप एवं एकीकृत प्रबंधन 10
धुवेंद्र सिंह सचान, धीर प्रताप सिंह एवं मनीष कुमार मौर्या

ए.डब्ल्यू. डी.: धान में सिंचाई की नवीन पद्धति 11
शशांक शेखर, नरेन्द्र प्रताप एवं जे. पी. सिंह

कृषक उत्पादक संगठन (एफ0पी0ओ0) 13
अनिल कुमार, ए.पी. राव एवं शशांक शेखर सिंह

पपीता के प्रमुख रोग एवं उनका निदान 15
उमेश बाबू, सी.पी.एन. गौतम एवं रामजीत

किसानों की आय दोगुनी करने के लिए दुग्ध उत्पादन व्यवसाय 17
आनन्द जायसवाल, रितेश सिंह एवं तारकेश्वर

कटहल की बागवानी, प्रसंस्करण व मूल्य संवर्धित उत्पाद द्वारा स्वांलम्बी बने कृषक महिलाएं 19
रेनू सिंह एवं शैलेन्द्र कुमार सिंह

नर्सरी तालाब प्रबंधन 21
प्रमोद कुमार, ए. पी. राव एवं एस. के. वर्मा

गोवंशीय पशुओ में गिल्टी रोग (एंथ्रेक्स) का निदान, उपचार व बचाव के उपाय 23
डी. डी. सिंह एवं ए. पी. राव

जुलाई माह में किसान भाई क्या करें 27

प्रश्न किसानों के, जवाब वैज्ञानिकों के 27

बॉक्स सूचनाएं

अमूल्य सुझाव 03

पूर्वाञ्चल खेती पढ़िये, आगे बढ़िये 22

प्रसार निदेशालय, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या

विश्वविद्यालय के कार्य क्षेत्र में स्थापित विभिन्न कृषि विज्ञान/ज्ञान केन्द्र एवं अनुसंधान केन्द्र

क्र. सं.	कृषि विज्ञान केन्द्र	वरिष्ठ वैज्ञानिक/अध्यक्ष/प्रभारी अधिकारी	दूरभाष कार्यालय	मोबाइल
1.	वाराणसी	डॉ. नरेन्द्र रघुवंशी	05542–248019	9415687643
2.	बस्ती	डॉ. एस. एन. सिंह	05498–258201	9450547719
3	बलिया	श्रीमती प्रेमलता श्रीवास्तव	–	9918175154
4.	फैजाबाद	डॉ. शशिकान्त यादव	05278–254522	9415188020
5.	मऊ	डॉ. एल. सी. वर्मा	0547–2536240	7376163318
6.	चंदौली	डॉ. एस. पी. सिंह	0541–2260595	9458362153
7.	बहराइच	डॉ. विनायक शाही	05252–236650	8755011086
8.	गोरखपुर	डॉ. सतीश कुमार तोमर	–	9415155518
9.	आज़मगढ़	डॉ. डी.के. सिंह	–	9456137020
10.	बाराबंकी	डॉ. शैलेश कुमार सिंह	–	9455501727
11.	महाराजगंज	डॉ. डी. पी. सिंह	–	7839325836
12.	जौनपुर	डॉ. सुरेश कुमार कनौजिया	–	9984369526
13.	सिद्धार्थनगर	डॉ. ओम प्रकाश	05541–241047	9452489954
14.	सोनभद्र	डॉ. पी. के. सिंह	–	9415450175
15.	बलरामपुर	डॉ. एस. के. वर्मा	–	9450885913
16.	अम्बेडकरनगर	डॉ. रामजीत	–	9918622745
17.	संतकबीरनगर	डॉ. अरविन्द सिंह	–	9415039117
18.	अमेठी	डॉ. रतन कुमार आनन्द	–	9838952621
19.	बहराइच (नानपारा)	डॉ. के. एम. सिंह	–	9307015439
20.	मनकापुर–गोण्डा	डॉ. मिथिलेश पाण्डे	–	9415665138
21.	बरासिन–सुल्तानपुर	डॉ. वी.पी. सिंह	–	9839420165
22.	अमिहित–जौनपुर	डॉ. संजीत कुमार	–	9837839411
23.	गाजीपुर	डॉ. आर. सी. वर्मा	–	9411320383
24.	श्रावस्ती	डॉ. आर.पी.एस. रघुवंशी	–	9415533739
25.	आजमगढ़ द्वितीय	डॉ. डी.के. सिंह	–	9456137020

विश्वविद्यालय के कृषि ज्ञान केन्द्र

क्र.सं.	कृषि विज्ञान केन्द्र	प्रभारी अधिकारी/	मोबाइल	दूरभाष कार्यालय
1.	अमेठी	डॉ. ए. पी. राव.	9415720376	–
2.	गोण्डा	डॉ. ए. पी. राव	9415720376	–
3.	देवरिया	डॉ. ए. पी. राव	9415720376	–
4.	गाजीपुर	डॉ. ए. पी. राव	9415720376	–

विश्वविद्यालय के अनुसंधान केन्द्र

क्र.सं.	कृषि अनुसंधान केन्द्र	प्रभारी अधिकारी/	मोबाइल	दूरभाष कार्यालय
1.	मसौधा, फैजाबाद	डॉ. डी. के. द्विवेदी	7706884188	05278–254153
2.	तिसुही, मिर्जापुर	डॉ. पी. के. सिंह	9415450175	05442–284263
3.	बसुली, महाराजगंज	डॉ. डी. पी. सिंह	9451430507	–
4.	घाघरा घाट, बहराइच	डॉ. नितेन्द्र प्रकाश	9026289336	0525–235205
5.	बड़ा बाग, गाजीपुर	डॉ. सी. पी. सिंह	9628631637	–
6.	बहराइच	डॉ. एस. के. सिंह	8787289358	0548–223690

प्रो. ए. पी. राव
निदेशक प्रसार

आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय
कुमारगंज, अयोध्या-224 229 (उ.प्र.), भारत
टेलीफैक्स : 05270-262821
फैक्स : 05270-262821

सम्पादकीय

कृषि आधारित आय में वृद्धि के लिये पिछले कुछ दशकों में हमारे किसान भाईयों ने फसलों पर अधिकाधिक उर्वरकों व रसायनों का उपयोग किया और बढ़ी हुयी उत्पादकता प्राप्त की परन्तु ज्यादा उत्पादन के चक्कर में कृषि लागत पर लोगों ने ध्यान नहीं दिया परिणामस्वरूप कृषि आधारित आय में बढ़ोत्तरी नहीं हो पा रही थी। कृषि क्षेत्र की इन्हीं समस्याओं को ध्यान में रखकर सरकार व नीति निर्माताओं ने गुणवत्ता युक्त कृषि उत्पादन व न्यूनतम लागत में बेहतर उत्पादन हासिल करने वाली तकनीकी विकसित करने के साथ इसके प्रचार प्रसार पर ध्यान देना प्रारम्भ किया है। इसी क्रम में पत्रिका के प्रस्तुत अंक में विभिन्न फसलों के बेहतर उत्पादन व एकीकृत प्रबन्धन पर वैज्ञानिक आलेख प्रस्तुत हैं। आशा है कि पत्रिका का यह अंक हमारे कृषक पशुपालन व बागवानों के साथ–साथ प्रसार कार्यकर्ताओं के लिये उपयोगी सिद्ध होगा।

(ए.पी. राव)

मूंग की उन्नत खेती

संजीत कुमार* एवं ए.पी. राव**

मूंग ग्रीष्म एवं खरीफ दोनों मौसम की कम समय में पकने वाली एक मुख्य दलहनी फसल है। इसके दाने का प्रयोग मुख्य रूप से दाल के लिये किया जाता है जिसमें 24–26 प्रतिशत प्रोटीन, 55–60 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट एवं 1.3 प्रतिशत वसा होता है। दलहनी फसल होने के कारण इसकी जड़ो में गाठें पाई जाती है जो कि वायुमण्डलीय नत्रजन का मृदा में स्थिरीकरण (38–40 कि.ग्रा. नत्रजन प्रति हैक्टयर) एवं फसल की खेत से कटाई उपरांत जड़ो एवं पत्तियो के रूप में प्रति हैक्टयर 1.5 टन जैविक पदार्थ भूमि में छोड़ा जाता है जिससे भूमि में जैविक कार्बन का अनुरक्षण होता है एवं मृदा की उर्वराशक्ति बढाती है।

भूमि : सिंचित एवं असिंचित दोनों क्षेत्रों में इस की खेती आसानी से की जा सकती है। इस की सफलतापूर्वक खेती के लिए अच्छी जल निकासी वाली बलुई दोमट मिट्टी सब से अच्छी मानी जाती है।

मूंग की प्रजातियां : नरेंद्र मूंग 1, पंत मूंग 2, पंत मूंग 4, एच.यू.एम.6, सुनैना, जवाहर मूंग 45, जवाहर मूंग 70 आदि।

बीज की मात्रा : गरमी के मौसम में मूंग के लिए बीज दर 20 किलोग्राम प्रति हेक्टयर रखनी चाहिए और बोआई कतारों में 20 से 25 सेंटीमीटर की दूरी पर करनी चाहिए। खरीफ मौसम में 12 से 15 किलोग्राम बीज प्रति हेक्टयर की दर से डालना फायदेमंद होगा और बोआई कतारों में 30 से 40 सेंटीमीटर की दूरी पर करनी चाहिए।

बोआई का समय व तरीका : जायद मूंग की बोआई, जहां सिंचाई की सुविधा हो वहां रबी फसलों की कटाई के तुरंत बाद कर देनी चाहिए। खरीफ मौसम में मूंग की बोआई मानसून आने पर जून के दूसरे पखवाडे से जुलाई के पहले पखवाड़े के बीच करनी चाहिए। मूंग की बोआई कतारों में करनी चाहिए। 2 कतारों के बीच की दूरी 30 से 45 सेंटीमीटर रखनी चाहिए। बीजों को 4 से 5 सेंटीमीटर की गहराई पर बोना चाहिए। मूंग के बीजों को पहले कार्बेंडाजिम से उपचारित करने के बाद ही बोना चाहिए।

खेत की तैयारी : खेत में 1 बार मिट्टी पलटने वाले हल से जुताई करके 2 से 3 बार कल्टीवेटर या देशी हल से जुताई करनी चाहिए और पाटा चला कर खेत को बराबर बना लेना चाहिए।

खाद व उर्वरक : मूंग दलहनी फसल है, इसलिए इस में ज्यादा नाइट्रोजन की जरूरत नहीं पड़ती है, फिर भी 20 किलोग्राम नाइट्रोजन, 50 किलोग्राम फास्फोरस व 20 किलोग्राम पोटाश की मात्रा प्रति हेक्टयर की दर से बोआई के समय देना फायदेमंद होगा। गंधक की कमी वाले क्षेत्रों में गंधकयुक्त उर्वरक 20 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर के हिसाब से देना चाहिए। सभी चारो तरह के उर्वरकों की पूरी मात्रा बोआई से पहले या बोआई के समय ही देनी चाहिए।

सिंचाई व जल निकास : खरीफ में मूंग की फसल को सिंचाई की जरूरत नहीं पड़ती है। अधिक बारिश की दशा में खेत से पानी निकालना बेहद जरूरी होता है। पानी न निकालने से पद्गलन रोग हो जाता है, जिससे फसल को भारी नुकसान होता है। गरमी में मूंग की फसल में खरीफ की तुलना में पानी की ज्यादा जरूरत होती है। गरमी के मौसम में 15 से 20 दिनों के अंतर पर 3 से 4 सिंचाई करनी चाहिए।

निराई–गुडाई व खरपतवार नियंत्रण : बोआई के 15 से 20 दिनों बाद पहली और 40 से 45 दिनों बाद दूसरी निराई करनी चाहिए। घास व चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों को रासायनिक विधि द्वारा खत्म करने के लिए फ्लूक्लोरिलिन 45 ईसी की 1.5 लीटर मात्रा/हेक्टयर 800 से 1000 लीटर पानी में घोल कर बोआई से पहले खेत में छिड़काव करें।

मूंग के कीट

काला लाही माहूं : नए पौधे से फली निकलने की दशा में इस कीट के शिशु व वयस्क पौधों की पत्तियों पर पाए जाते हैं। ये बसंतकालीन फसल की मुलायम

*वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष, कृषि विज्ञान केंद्र, जौनपुर–2, **निदेशक प्रसार, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या, उ.प्र.

टहनियों, फूलों व कच्ची फलियों से रस चूसते हैं।

रोकथाम : माहूं का प्रकोप होने पर पीले चिपचिपे ट्रैप का इस्तेमाल करें, ताकि माहूं ट्रैप पर चिपक कर मर जाएं। नीम का अर्क 5 प्रतिशत या 1.25 लीटर नीम का तेल 100 लीटर पानी में मिला कर छिड़कें। इस के बावजूद रोकथाम न हो तो मेटासिस्टाक्स 25 ईसी या डाइमेथोएट 30 ईसी या इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एसएल या थायोमेक्जाम 25 ईसी 1 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी की दर से छिड़कें।

हरा फुदका (जैसिड) : फसल की शुरुआती दशा से लेकर पौधों की पत्तियां व फलियां निकलने तक इस के शिशु व वयस्क हमला कर के रस चूसते हैं। रोगी पौधों की बढ़वार सामान्य से काफी कम हो जाती है।

रोकथाम : अकेली फसल के बजाय मिश्रित खेती करनी चाहिए। खासकर ज्यादा लंबाई वाली फसलों जैसे गन्ना, ज्वार व सूरजमुखी वगैरह में से किसी एक को मूंग के साथ 6:1 या 6:2 के अनुपात में लगाना चाहिए। इससे रोशनी पसंद करने वाले हरा फुदका जैसे कीड़ों की संख्या पर बहुत हद तक नियंत्रण हो जाता है। इसके बाद भी रोकथाम न हो तो मेटासिस्टाक्स 25 ईसी या डाइमेथोएट 30 ईसी या इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एसएल या थायोमेक्जाम 25 ईसी 1 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी की दर से छिड़कें।

सफेद मक्खी : इस कीट के द्वारा फसल को कई तरह से नुकसान पहुंचाया जाता है। यह पौधों से रस चूसती है और पत्तियों पर स्रावित मधु छोड़ती है। द्रव पर काला चूर्णी फफूंदी (शूटी मोल्ड) के पनपने व फैलने से प्रकाश संश्लेषण की क्रिया में रुकावट होती है और पीला चितकबरा रोग (पीला मोजैक) के विषाणु तेजी से फैलते हैं। रोगी फसल पूरी तरह से बरबाद हो जाती है।

रोकथाम : सफेद मक्खी से बचाव के लिए बोआई से 24 घंटे पहले डायमेथोएट 30 ईसी कीटनाशी रसायन से 8.0 मिलीलीटर प्रति किलोग्राम बीज की दर से बीजोपचार करना चाहिए। शुद्ध फसल के बजाय मिश्रित खेती करना ज्यादा लाभप्रद है। खासकर ज्यादा लंबाई वाली फसलों जैसे गन्ना, ज्वार व सूरजमुखी वगैरह में से किसी 1 को मूंग के साथ 6:1 या 6:2 अनुपात से लगाने से रोशनी पसंद करने वाले सफेद मक्खी जैसे कीड़ों की संख्या पर बहुत हद तक नियंत्रण हो पाता है।

पीला मोजैक रोग के विषाणु को फैलाने वाली सफेद मक्खी की रोकथाम के लिए मिथाइल डेमीटान (मेटासिस्टाक्स) 25 ईसी का 625 मिलीलीटर या मैलाथियान 50 ईसी या डायमेथोएट 30 ईसी का 1 लीटर प्रति हेक्टेयर की दर से जरूरत के मुताबिक छिड़काव करना चाहिए।

थ्रिप्स : मूंग की फसल पर फूल की दशा में गरमी में मुलायम कलियों पर थ्रिप्स कीटों का हमला होता है। ये फूलों को बहुत नुकसान पहुंचाते हैं। मूंग की फलियों पर भी थ्रिप्स कीटों का प्रकोप होता है और उन में दाने विकसित नहीं हो पाते। सभी रस चूसक कीटों में थ्रिप्स सब से ज्यादा हानिकारक है।

रोकथाम : थ्रिप्स की रोकथाम करने के लिए फूल खिलने से पहले ही डायमेथोएट 30 ईसी या मैलाथियान 50 ईसी का 1 लीटर प्रति हेक्टेयर या मेटासिस्टाक्स 25 ईसी का 700 मिलीलीटर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करना चाहिए।

नीली तितली : फूल व फली की दशा में इस के पिल्लू मुलायम कलियों व फूलों पर हमला करते हैं। ये फलियों में छेद बना कर घुस जाते हैं व अंदर के ऊतक को खाते हैं। ये फलियों के अंदर विकसित हो रहे दानों को विशेष रूप से नुकसान पहुंचाते हैं।

रोकथाम : फली बेधक नीली तितली की रोकथाम के लिए निबौली (सूखा हुआ नीम बीज) के चूर्ण को पानी में घोल (5.0 प्रतिशत) कर फूल निकलने के साथ छिड़काव करना चाहिए। यदि फली बेधक तितली की संख्या काफी अधिक हो जाए तो फली बनने की शुरुआती अवस्था में मैलाथियान 50 ईसी का 1.0 लीटर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करना चाहिए।

मूंग के रोग

पीली चितेरी रोग (येलो मोजेक) : मूंग का पीला चितेरी रोग विषाणु द्वारा पैदा होने वाला सबसे खतरनाक रोग है। यह विषाणु बीज व छूने से फैलता है। पीली चितेरी रोग सफेद मक्खी (बेमिसिया टैबेसाई) जो एक रस चूसक कीट है के द्वारा फैलता

है। रोग से प्रभावित पौधे देर से पनपते हैं। इन पौधों में फूल और फलियां स्वस्थ पौधों के मुकाबले बहुत ही कम लगती हैं।

रोकथाम : बोआई के लिए रोग रोधी व उन्नत प्रजातियों, नरेंद्र मूंग 1, पीडीएम 11, पूसा विशाल, एच. यू.एम. 6 आदि का चयन करें। सफेद मक्खी की रोकथाम के लिए मोनोक्रोटोफास (0. 04 प्रतिशत) का छिड़काव करना चाहिए।

झुर्रीदार पत्ती रोग (लीफ क्रिंकल) : यह रोग 'उर्द बीन लीफ क्रिंकल विषाणु' द्वारा होता है। रोग का फैलाव पौधे के रस (सैप) व बीज से होता है। यह खेत में लाही (माहूं) व अन्य कीटों द्वारा भी फैलता है। इस विषाणु के संक्रमण से फूल कलिकाओं में पराग कण बांझ हो जाते हैं, जिस से रोगी पौधों में फलियां कम लगती हैं।

रोकथामः बोआई के लिए रोग रोधी व उन्नत प्रजातियों का चयन करना चाहिए। सफेद मक्खी की रोकथाम के लिए फसल पर मेटासिस्टाक्स या मैलाथियान या डामेथोएट या मोनोक्रोटोफास (0. 04 प्रतिशत) का छिड़काव करना चाहिए।

सर्कोस्पोरा पत्र टिक्का रोगः यह 'सर्कोस्पोरा' नामक प्रजातियों द्वारा होता है। इस रोग के लक्षण पत्तियों पर गहरे भूरे रंग के धब्बों के रूप में प्रकट होते हैं। अनुकूल वातावरण में ये धब्बे बड़े आकार के हो जाते हैं। फूल आने व फलियां बनने के समय रोगी पत्तियां गिर जाती हैं। रोग पैदा करने वाले कवक बीज व रोग ग्रसित पौधों के मलवे पर भूमि में जीवित रहते हैं।

रोकथाम : बोआई से पहले बीजों को कवकनाशी कार्बाडेंजिम 2 ग्राम या थीरम 2–5 ग्राम से प्रति किलोग्राम की दर से उपचारित करना चाहिए। फसल पर रोग के लक्षण दिखाई पड़ते ही कार्बेंडाजीम (0.1 प्रतिशत) कवकनाशी के घोल का छिड़काव करना चाहिए।

चूर्णी फफूंदी रोग : यह रोग इरीसिफी पोलीगोनाई नामक कवक द्वारा होता है। गरम व सूखे वातावरण में यह रोग तेजी से फैलता है। इस रोग में पौधों की पत्तियों, तनों व फलियों पर सफेद चूर्णी धब्बे दिखाई देते हैं। रोग के ज्यादा होने से पत्तियां पूरी बनने से पहले सूख जाती हैं।

रोकथाम : फसल पर रोग के लक्षण दिखाई पड़ते ही कार्बेंडाजीम की 1 ग्राम या सल्फेक्स 3 ग्राम मात्रा का प्रति लीटर पानी की दर से घोल बना कर छिड़काव करना चाहिए।

कटाई–मड़ाई : फसल की कटाई मूंग की किस्म पर निर्भर करती है। एक ही समय में पकने वाली प्रजाति में जब फसल 80 प्रतिशत तक पक जाती है, तो उसे जड़ से उखाड़ लेते हैं या काट लेते हैं। उस के बाद धूप में सुखा कर ट्रैक्टर चलाकर या लकड़ी के डंडे से पीटकर दाना अलग कर लेते हैं। सही समय पर फसल की गहाई के बाद दाना सुखाकर करके भंडारण करें।

उपज : मूंग की औसत उपज 8 से 10 क्विंटल प्रति हेक्टयर होती है। उन्नत खेती करने पर इस की पैदावार 12–15 क्विंटल प्रति हेक्टयर तक ली जा सकती है।

अमूल्य सुझाव

- ऊसर व बंजर भूमि का उपचार कर कृषि योग्य बनाकर खेती के प्रयोग में लाएं।
- सिंचाई जल उपयोग में बृद्धि हेतु ड्रिप एवं स्प्रिकलर पद्धति पर बढ़ावा देना तथा इसके प्रयोग पर प्रशिक्षण प्रदान कर इसे बढाने तथा क्रान्तिक अवस्थाओं पर उचित मात्रा में सिंचाई करें।
- कृषि लागत में कमी हेतु कृषि यन्त्रीकरण का प्रयोग कर जीरो टिलेज, सीडड्रिल व कम्बाइन हार्वेस्टर के साथ भूसा बनाने वाली मशीन के प्रयोग पर बल दिया जाय।
- मृदा स्वास्थ्य बढ़ानें के लिए जैविक उर्वरक, कार्बनिक खाद, फसल अवशेषों का प्रबन्ध व मृदा स्वास्थ्य कार्ड के अनुसार उर्वरकों के संतुलित प्रयोग पर बल दिया जाना जिससे उत्पादन बढानें के साथ लागत में कमी आये।

सोयाबीन की उन्नत खेती : किसान भाईयों के लिए वरदान

नवनीत सिंह*, अमन सिंह** एवं निहारिका सिंह*

सोयाबीन की खेती अधिक हल्की, हल्की व रेतीली भूमि को छोड़कर सभी प्रकार की भूमि में सफलतापूर्वक की जा सकती है, परंतु पानी के निकास वाली चिकनी दोमट भूमि सोयाबीन के लिये अधिक उपयुक्त होती है। जिन खेतों में पानी रुकता हो, उनमें सोयाबीन न लें।

ग्रीष्मकालीन जुताई 3 वर्ष में कम से कम एक बार अवश्य करनी चाहिये। वर्षा प्रारम्भ होने पर 2 या 3 बार बखर तथा पाटा चलाकर खेत का तैयार कर लेना चाहिये। इससे हानि पहुंचाने वाले कीटों की सभी अवस्थायें नष्ट होंगी। ढेला रहित और भुरभुरी मिट्टी वाले खेत सोयाबीन के लिये उत्तम होते हैं। खेत में पानी भरने से सोयाबीन की फसल पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है अतः अधिक उत्पादन के लिये खेत में जल निकास की व्यवस्था करना आवश्यक होता है। जहां तक सम्भव हो आखिरी बखरनी एवं पाटा समय से करें जिससे अंकुरित खरपतवार नष्ट हो सकें। यथा सम्भव मेंढ़ और कूंड़ (रिज एवं फरों) बनाकर सोयाबीन बोयें।

सोयाबीन में पाए जाने वाले पोषक तत्व

सोयाबीन में प्रोटीन, कैल्शियम, फाइबर, विटामिन ई, बी कॉम्प्लेक्स, थाइमीन, राइबोफ्लेविन अमीनो अम्ल सैपोनिन, साइटोस्टेरॉल, फेनोलिक एसिड एवं अन्य कई पोषक तत्व होते हैं जो शरीर के लिए फायदेमंद होते हैं। इसमें आयरन होता है जो एनिमिया को दूर करता है।

अंतवर्ती फसलें

सोयाबीन के साथ अंतरवर्तीय फसलों के रुप में अरहर सोयाबीन (2:4), ज्वार सोयाबीन (2:2), मक्का सोयाबीन (2:2), तिल सौयाबीन (2:2) अंतरवर्तीय फसलें उपयुक्त हैं।

सोयाबीन की खेती के लिए जलवायु एवं मिट्टी

सोयाबीन की खेती के लिए गर्म और नम जलवायु अच्छी रहती है। इसकी खेती के लिए उचित तापमान 26–32 डिग्री सेल्सियस होना चाहिए। सोयाबीन की खेती के अच्छे जल निकास वाली दोमट भूमि अच्छी रहती है। मिट्टी का पीएच मान 6.0 से 7.5 होना चाहिए।

सोयाबीन की उन्नत किस्में

भारतीय सोयाबीन अनुसंधान संस्थान ने चार सोयाबीन किस्मों का विकास किया है जैसे एनआरसी 2 (अहिल्या–1), एनआरसी–12 (अहिल्या 2), एनआरसी –7 (अहिल्या 3) और एनआरसी –37 (अहिल्या 4) है। इसके अलावा संस्थान ने कई किस्मों जैसे–जेएस 93–05, जेएस 95–60, जेएस 335, जेएस 80–21, एनआरसी 2, एनआरसी 37, पंजाब , कलितुर को उच्च बीज लॉजविटी के साथ विकसित किया गया है। इसके अलावा एम. ए.सी.एस. के भारतीय वैज्ञानिकों ने सोयाबीन की एक नई किस्म जो अधिक उपज देने वाली और कीट प्रतिरोधी किस्म एमएसीएस 1407 विकसित की है। यह नई किस्म असम, पश्चिम बंगाल, झारखंड, छत्तीसगढ़ और पूर्वोत्तर राज्यों में खेती के लिए उपयुक्त बताई जा रही है। इसके बीज वर्ष 2022 के खरीफ के मौसम के दौरान किसानों को बुवाई के लिए उपलब्ध कराएं जाएंगे। इस किस्म से उपज में 17 प्रतिशत की बढ़ोतरी हो सकती है। इस किस्म से प्रति हेक्टेयर में 39 क्विंटल का पैदावार ली जा सकती है। इसकी बुवाई का उचित समय 20 जून से 5 जुलाई है। इसके बीजों में 19.81 प्रतिशत तेल की मात्रा है।

कतार में बुवाई का निर्धारण

सोयाबीन की बुवाई 45 सेमी से 65 सेमी की दूरी पर सीड ड्रिल की सहायता से या हल के पीछे खूंट से करनी चाहिए। कतारों में सोयाबीन की बुवाई करते समय कम फैलने वाली प्रजातियों जैसे जे.एस. 93–05, जे.एस. 95–60 इत्यादि के लिए बुवाई के समय कतार से कतार की दूरी 40 से.मी. रखें। वहीं अधिक फैलनेवाली किस्में जैसे जे.एस. 335, एन.आर. सी. 7, जे.एस. 97–52 के लिए 45 से.मी. की दूरी

(शेष पृष्ठ 09 पर)

*शोध छात्र (सब्जी विज्ञान), **विषय वस्तु विशेषज्ञ अनुवांशिकी एवं पादप विज्ञान, कृषि विज्ञान केंद्र हैदरगढ़ बाराबंकी, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या, उ.प्र.

धान में खरपतवार प्रबन्धन

विशाल सिंह* एवं संजीव सिंह**

धान हमारे देश की प्रमुख खाद्यान फ़सल है। धान का राष्ट्रीय आच्छादन, उत्पादन एवं उत्पादकता 43.77 मिलीयन हेक्टेयर, 112.76 मिलीयन टन एवं 25.76 क्विंटल प्रति हेक्टेयर क्रमशः है। देश की बढ़ती हुई जनसंख्या के साथ खाद्यानों की मांग को पूरा करना एक गम्भीर चुनौती बनी हुई है। राष्ट्रीय स्तर पर धान की औसत पैदावार इसकी क्षमता से काफ़ी कम है, इसके प्रमुख कारण है –कीट एवं ब्याधियां, बीज की गुणवत्ता, गलत शस्य क्रियाएं, तथा खरपतवार। धान की उत्पादन क्षमता को बढ़ाने के लिये सुधरी खेती की सभी प्रायोगिक विधियों को अपनाना आवश्यक है। हमारे देश में धान की खेती मुख्यतया दो परिस्थितियों में की जाती है– वर्षा आधारित तथा सिंचित। ऊची भूमि में वर्षा आधारित खेती में नींदा नियन्त्रण एक बड़ी समस्या है, यदि इसका समय से नियन्त्रण न किया जाये तो फ़सल पूरी तरह नष्ट हो जाती है। जहां पर सिंचाई की सुविधा उपलब्ध है वहां पर रोपाई या बुवाई से पहले मचाई करने से नींदा पर काफ़ी नियन्त्रण पाया जा सकता है। धान की उत्पादकता की कमी में, वैज्ञानिक विधि से खरपतवार नियंत्रण का आभाव एक महत्वपूर्ण कारक है, इसलिए ससमय एवं उचित विधि से खरपतवार नियंत्रण किया जाए तो धान की उत्पादकता में 20 से 40 प्रतिशत तक वृद्धि की जा सकती है।

धान के खेत में निम्न महत्वपूर्ण खरपतवार सम्बद्ध पाया जाता है–

1. घासः इकाइनोक्लोआ कोलोनम (छोटा सांवक), इकाइनोक्लोआ क्रुसगल्ली (सांवक), डकटाईलाक्टिनियम अजीपसियम (मकड़ा), पास्पेलम डिस्टीकम (कोडा), इल्युसीन इंडिका (मंडुआ), बरकियारिया रेपटेन्स (खरवां), इराग्रोस्टीस जापोनिका (मुरमुर) इत्यादि।

2. चौड़ी पत्तीः इक्लीप्टा एल्बा (केना), सैजुलिया एक्जिलारिस (थुजकर), कोम्मेलिना डिफ्युजा (केन), एजीरेटम कोन्जनोएडेस (बोका), कोककोरस ओलीटोरियस (पट), सैजिटेरिया लाटिफोलिया (पान पत्ता), स्फेनोक्लीआ जेलानिक (मिर्च बूटी/मिर्ची), अमनिया ग्रासिलिस (गंठजोड़), मारसिलिया क्वाडिफोलिया (धन पापड़), लुडविजिया हाईसोपिफोलिया (गंठजोड़ बन पटुआ), मोनोकोरिया वैजिनालिस (नंनका), इत्यादि।

3. नरकटः साइप्रस इरिया (डिल्ला), साइप्रस रोटन्डस (मोथा), फिंमब्रिस्टाइलिस मिलिएसी (झिरुआ), स्कीरपस मैंरिटिमस (बुचड़), साइप्रस डिफोरमिस (नागरमोथा), सायानोटिक एक्सीलेरिस (गारेंडा) इत्यादि।

खरपतवारों से हानियां

खरपतवार प्रायः फ़सल से नमी, पोषक तत्व, सूर्य का प्रकाश तथा स्थान के लिये प्रतिस्पर्धा करते हैं जिससे मुख्य फ़सल के उत्पादन में कमी आ जाती है। धान की फ़सल में खरपत्वारों से होने वाले नुकसान को 15–85 प्रतिशत तक आंका गया है। कभी–कभी यह नुकसान 100 प्रतिशत तक पहुंच जाता है। सीधे बोये गये धान में रोपाई किये गये धान की तुलना में अधिक नुकसान होता है। पैदावार में कमी के साथ –साथ खरपतवार धान में लगने वाले रोगों के जीवाणुओं एवं कीट व्याधियों को भी आश्रय देते हैं। कुछ खरपतवार के बीज धान के बीज के साथ मिलकर उसकी गुणवत्ता को खराब कर देते हैं।

खरपतवारों की रोकथाम कैसे करें

खरपतवारों की रोकथाम में ध्यान देने वाली बात यह है कि खरपतवारों का सही समय पर नियन्त्रण किया जाये चाहे किसी भी तरीके से करें।धान की फ़सल में खरपतवारों की रोकथाम निम्न तरीकों से की जा सकती है।

1– निवारक विधिः प्रमाणिक बीजों का प्रयोग ,अच्छी सड़ी गोबर की खाद, कम्पोस्ट खाद का प्रयोग, सिचाई की नालियों की सफ़ाई , खेत की तैयारी एवं बुवाई में प्रयोग किये जाने वाले यन्त्रों की बुवाई से पूर्व सफ़ाई एवं अच्छी तरह से तैयार की गई नर्सरी से पौध को

*शोध छात्र, सस्य विज्ञान विभाग, **गेस्ट फैकल्टी, सस्य विज्ञान विभाग, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या, उ.प्र.

रोपाई के लिये लगाना आदि।

2– यान्त्रिक विधिः धान के खरपतवारों को नष्ट करने के लिए खुरपी या पैडीवीडर का प्रयोग करें। इस विधि से खरपतवार हटाने का कार्य दो बार करना चाहिए। पहला रोपाई के 20 दिनों के बाद (प्रथम यूरिया उपरिवेशन के पहले) एवं दूसरी बार रोपाई के 50–60 दिनों के बाद (द्वितीय यूरिया उपरिवेशन के पहले)।

3–शस्य क्रियाओं में परिवर्तन द्वारा

- बुवाई से पूर्व खरपतवारों को नष्ट करके (स्टेल सीड बैड)
- गहरी जुताई द्वारा
- किस्मों का चुनाव एवं धान बुवाई की तिथि
- कतारों के बीच की दूरी एवं बीज की मात्रा
- उचित फसल चक्र अपनाकर
- सिंचाई एवं जल प्रबंधन
- उर्वरकों का प्रयोग

4– रासायनिक विधि

धान की फ़सल पर लगने वाले खरपतवारों को नष्ट करने के लिए खरपतवारनाशी रसायनों को फसल की बुवाई/रोपाई के पश्चात संस्तुत मात्रा में प्रयोग किया जाता है, जो तुलनात्मक दृष्टि से अल्पव्ययी होने के कारण अधिक लाभकारी व ग्राह्य है।

- नर्सरी में खरपतवार नियंत्रण हेतु प्रेटिलाक्लोर 30.7 प्रतिशत ई०सी० 500 मिली० प्रति एकड़ की दर से 5–7 किग्रा० बालू में मिला कर पर्याप्त नमी की स्थिति में नर्सरी डालने के 2–3 दिन के अन्दर प्रयोग करना चाहिए।
- सीधी बुवाई की स्थिति में प्रेटिलाक्लोर 30.7 प्रतिशत ई०सी० 1.25 लीटर बुवाई के 2–3 दिन के अन्दर अथवा बिसपाइरी बैक सोडियम 10 प्रतिशत एस०सी० 0.20 लीटर बुवाई के 15–20 दिन बाद प्रति हे० की दर से नमी की स्थिति में लगभग 500 लीटर पानी में घोलकर फ्लैट फैन नॉजिल से छिड़काव करना चाहिए।
- रोपाई की स्थिति में– सकरी एवं चौड़ी पत्ती दोनों प्रकार के खरपतवारों के नियंत्रण हेतु निम्नलिखित रसायनों में से किसी एक रसायन की संस्तुत मात्रा को प्रति हे० लगभग 500 लीटर पानी में घोलकर फ्लैट फैन नॉजिल से 2 इंच भरे पानी में रोपाइ के 3–5 दिन के अन्दर छिड़काव करना चाहिए।
- एनीलोफास 30 प्रतिशत ई०सी० 1.25–1.50 लीटर
- प्रेटिलाक्लोर 50 प्रतिशत ई०सी० 1.60 लीटर
- पाइराजोसल्फ्यूरान इथाईल 10 प्रतिशत डब्लू०पी० 0.15 किग्रा०
- बिसपाइरीबैक सोडियम 10 प्रतिशत एस०सी० 0.20 लीटर रोपाई के 15–20 दिन बाद नमी की स्थिति मे।

नोटः– उद्भव के बाद (पोस्ट इमरजेंस) प्रयोग में आने वाले खरपतवारनाशकों के प्रयोग के समय एवं प्रयोग के उपरांत एक सप्ताह तक मृदा में नमी बनाकर रखना चाहिए, इससे इन रसायनों के पूरे कार्यक्षमता एवं दक्षता का पूर्ण लाभ मिल पाता है।

प्रयोग की विधि

1. खरपतवारनाशी रसायनों की आवश्यक मात्रा को 600 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति हेक्टेयर की दर से समान रूप से छिड़काव करना चाहिए।
2. रोपाई वाले धान में खरपतवारनाशी रसायनों की आवश्यक मात्रा को 60 किग्रा. सूखी रेत में अच्छी तरह से मिलाकर रोपाई के 2–3 दिन के बाद 4–5 सेमी. खड़े पानी में समान रूप से बिखेर देना चाहिए।

सावधानियाँ

धान की फसल में मुख्यतः सभी प्रकार के खरपतवार (जैसे घास कुल, मोथा कुल एवं चौड़ी पत्ती वाले) पाये जाते है। इसलिए एक ही शाकनाशी का प्रयोग बार बार करने से कुछ विशेष प्रकार के ही खरपतवारों की रोकथाम हो पाती है तथा दूसरे प्रकार के खरपतवारों की संख्या में लगातार वृद्धि होती रहती है तथा कुछ समय बाद यही दूसरी प्रकार के खरपतवार मुख्य खरपतवार के रूप में उभर आते हैं और फसल में नकारात्मक प्रभाव डालते हैं। ऐसी परिस्थितियों में विभिन्न प्रकार के शाकनाशियों का मिश्रण (फील्ड मिश्रण या प्री मिश्रण) करके छिड़काव करने से खरपतवारों का प्रभावी रूप से नियंत्रण किया जा सकता है।

अत्यधिक पैदावार एवं मृदा स्वास्थ हेतु अपनायेः हरी खाद

अंकिता गौतम*, अखिल कुमार चौधरी** एवं आर. आर. सिंह***

मृदा उर्वरता एवं उत्पादकता तथा मृदा में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा को बढ़ाने के उद्देश्य से दलहनी अथवा गैर दलहनी फसलों को उनके वानस्पतिक वृद्धि काल में उपयुक्त समय पर जुताई करके मृदा में अपघटन के लिए दबाना ही हरी खाद देना कहलाता है। सघन कृषि पद्धति अपनाये जाने के कारण मृदा मं कार्बनिक पदार्थ की निरन्तर कमी होती रहती है। जबकि मृदा की उर्वरा शक्ति को कायम रखने के लिए मृदा में पर्याप्त मात्रा में कार्बनिक पदार्थ होना आवश्यक है। हमारे देश की मृदा में कार्बनिक पदार्थ की भारी कमी (न्यूनतम मात्रा 0.6 प्रतिशत) है। जबकि यूरोपीय देशों की मृदाओं में इसकी मात्रा 3.0 प्रतिशत तक पायी जाती है। देश की मृदा में कार्बनिक पदार्थ की कमी का प्रमुख कारण यह है कि कार्बनिक पदार्थ की आपूर्ति के लिए एकमात्र साधन गोबर की खाद है। किन्तु दुर्भाग्यवश देश के समस्त गोबर का लगभग 70 प्रतिशत भाग उपलों की शक्ल में ईंधन के रूप में उपयोग कर लिया जाता है। क्योंकि किसानों एवं अन्य कम आय के लोगों को ईंधन के लिए सस्ते और सुलभ साधनों के रूप में उपलों का कोई विकल्प नहीं है। इस कारण हरी खाद ही एकमात्र ऐसा साधन है जिसके उपयोग द्वारा मृदा में कार्बनिक पदार्थ की कमी को दूर किया जा सकता है।

हरी खाद के लिए उपयुक्त फसलें :–

हरी खाद के लिए प्रयुक्त होने वाली फसलों में कुछ विशेष गुणों का होना आवश्यक है। फसलें शीघ्र वृद्धि करने वाली हो, इनके तने, शाखाएं व पत्तियां मुलायम हो तथा अधिक से अधिक शाखाएं और पत्तियां हों, ताकि अधिक से अधिक कार्बनिक पदार्थ मिल सके। फसलें गहरी जड़ वाली हो ताकि गहराई से पोषक तत्वों का अवशोषण करके उन्हें हरी खाद के रूप में ऊपरी सतह में मिलाया जा सके। फसलें विभिन्न प्रकार की मृदाओं एवं जलवायु में उगने में समर्थ हों। फसलें सूखा व जलमग्नता के साथ–साथ कीट एवं बीमारियों के आक्रमण को भी सहन करने की क्षमता रखती हो। हरी खाद के लिए प्रयुक्त होने वाली प्रमुख दलहनी फसलें सनई, ढैचा, ग्वार, मूंग, ऊर्द, लोबिया, मटर, बरसीम, सैंजी तथा अदलहनी फसलें ज्वार, सरसों आदि हैं। हरी खाद के लिए दलहनी फसलों का उपयोग काफी उपयोगी पाया गया है। मुलायम फसलों का सड़ाव शीघ्र तथा रेशेदार फसलों का सड़ाव देर से होता है।

हरी खाद की फसलों की सस्य क्रियाएं एवं उत्पादन क्षमता :–

हरी खाद के लिए फसलों का चुनाव जलवायु, मृदा दशाओं एवं फसल चक्र के लिए उपयुक्तता के आधार पर करना चाहिए। सनई अच्छे जल निकास वाली बलुई अथवा दोमट मृदाओं के लिए उत्तम है। ढैंचा सभी प्रकार की जलवायु तथा मृदा दशाओं में सफलता पूर्वक उग जाती है। यह जलमग्न दशाओं में भी 1.5 मी0 की ऊँचाई कम समय में पा लेती है। यह एक सप्ताह तक 50–60 सेमी0 पानी भरा रहना भी सहन कर लेती है। इसे क्षारीय या लवणीय मृदाओं में भी उगाया जा सकता है। मूंग एवं उर्द को हल्की बलुई या दोमट मृदाओं में, खरीफ अथवा जायद में तथा वहां लें, जहां पानी न भरता हो। इन्हें सामान्यतः फली तोड़ने के बाद हरी खाद के लिए उपयोग में लाया जाता है। खराब जल निकास, भारी मटियार तथा क्षारीय मृदाओं के लिए उर्द एवं मूंग की फसल उपयुक्त नहीं पायी जाती है। ग्वार सामान्य दशाओं तथा कम वर्षा वाले क्षेत्र की बलुई मृदाओं में भी सफलता पूर्वक उगाई जा सकती है। लोबिया की फसल उचित जल निकास वाली बलुई दोमट मृदाओं के उपयुक्त तथा क्षारीय लवणीय मृदाओं के लिए अनुपयुक्त होती है।

हरी खाद के लिए प्रयुक्त विभिन्न फसलों की बुआई का समय एवं बीज की मात्रा का उपयोग (सारणी–1) के अनुसार करें। कम उर्वरता वाली मृदाओं में, दलहनी फसलों में 25 किग्रा0 तथा अदलहनी फसलों में 40–60 किग्रा0 नाइट्रोजन प्रति हैक्टेयर उपयोग करना उपयोगी पाया गया है।

*एम.एस.सी.(उद्यान), डा0 भीम राव अम्बेडकर केन्द्रीय विश्वविद्यालय, लखनऊ एवं **एम.एस.सी. (उद्यान), ***प्राध्यापक (मृदा विज्ञान), प्रसार निदेशालय आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या, उ.प्र.

नाइट्रोजन के उपयोग करने से फसल की प्रारंभिक वृद्धि अच्छी होगी तथा कार्बनिक पदार्थ की मात्रा बढ़ाने तथा अपघटन (सड़ान) को तीव्र करने में भी सहायक होगी। हरी खाद के लिए दलहनी फसलों में बुआई के समय फास्फोरस के उपयोग से हरी खाद की गुणवत्ता एवं हरे पदार्थ की मात्रा बढ़ जाती है। जिससे आगामी फसल को नाइट्रोजन एवं फास्फोरस की अधिक मात्रा उपलब्ध होती है। फास्फोरस की उपलब्धता की मात्रा, सीधे आगामी फसल में उपयोग किये जाने वाले फास्फोरस की तुलना में अधिक होती है। अतः दलहनी फसलों में 40–50 किग्रा0 फास्फोरस प्रति हैक्टेयर की दर से खेत में देना लाभदायक होगा। क्षारीय एवं लवणीय मृदाओं में हरी खाद की बोआई पर 40 किग्रा0 फास्फोरस प्रति हैक्टेयर का उपयोग उपयोगी पाया गया है। दलहनी फसलों में राइजोबियम कल्चर के उपयोग करने से भी हरी खाद के गुणवत्ता पर अनुकूल प्रभाव पड़ा है। हरी खाद के लिए फसलों की आवश्यकतानुसार सिंचाई करते रहना चाहिए।

हरी खाद की पलटाई का समय :–

हरी खाद की फसल से अधिकतम कार्बनिक पदार्थ एवं नाइट्रोजन प्राप्त करने के लिए एक विशेष अवस्था पर ही पलटाई करनी चाहिए। यह आवस्था वह है जब फसल अपरिपक्व हो, फूल निकलने प्रारम्भ हो गये हो तथा फसल की अधिकतम मुलायम हरे पदार्थ वाली अवस्था हो। यह अवस्था बोआई के 6 से 8 सप्ताह बाद प्राप्त होती है। इस समय पौधों की वानस्पतिक वृद्धि अधिक तथा शाखाएं एवं पत्तियां मुलायम होती है। यदि पलटाई में विलम्ब होता है तो पौधों के तनों एवं शाखाओं में रेशे की मात्रा बढ़ जाती है। जिससे फसल के सड़ाव में अधिक समय लगता है। सनई को लगभग 50 दिन तथ ढैंचा को 40–50 दिन की आयु पर पलटना चाहिए।

आगामी फसल की बुआई का समय :–

हरी खाद की पलटाई के बाद आगामी फसल की बुआई/रोपाई, हरी खाद की फसल के पूर्ण सड़ाव के बाद ही की जाती है। लगभग 20–30 दिन में फसल का पूर्ण सड़ाव हो जाता है। सड़ाव के लिए लगने वाला समय फसल की प्रकृति और जलवायु पर भी निर्भर करता है। जिन क्षेत्रों में पर्याप्त नमी तथा उच्च तापमान होता है, सड़ाव की क्रिया तेज होती है। धान के वे क्षेत्र जहां वर्षा अधिक, नम जलवायु तथा तापमान अधिक होता है, वहां फसल की पलटाई 40–50 दिन की अवस्था पर करनी चाहिए। लवणीय व क्षारीय मृदाओं में भी ढैंचा की 40 दिन की अवस्था पर पलटाई करने के तुरन्त बाद धान की रोपाई की जा सकती है क्योंकि लगभग 4–6 दिन में ही ढैंचा का 50 प्रतिशत सड़ाव हो जाता है तथा 20 दिन में पूर्ण सड़ाव होकर मृदा में मिल जाता है।

हरी खाद देने की विधि :–

जिस खेत में हरी खाद का उपयोग करना हो उसमें हरी खाद के लिए उपयुक्त फसलों को शुद्ध अथवा मिश्रित रूप में उगाया जाता है। इसके बाद फसल को वानस्पतिक वृद्धिकाल में डिस्क हैरो की सहायता से खेत में पलट देते है। फिर खेत की सिंचाई कर दी जाती है। इस विधि के लिए समुचित वर्षा या सुनिश्चित सिंचाई आवश्यक है।

हरी खाद के लाभ :–

1. हरी खाद के उपयोग से गन्ने के उत्पादन में 30–35 प्रतिशत, धान में 25–30 प्रतिशत तथा गेंहूँ में 20–50 प्रतिशत तक वृद्धि हो सकती है। अतः हरी खाद के उपयोग से फसलोत्पादन में वृद्धि भी होती है।

2. ढैंच की जब पलटाई की जाती है, तो ढैंचा विघटित होता है, जिससे अमोनिया गैस ढैंचा के कार्बनिक पदार्थ से क्रिया करके, इसकी उपरी सतह पर एक युग्म बना लेती है। यह गुम्म मृदा के कार्बनिक पदार्थ एवं लवणों से क्रिया करके अमोनिया को सोखते है। इससे नाइट्रोजन मृदा में लम्बे समय तक विद्यमान रह सकती है। यह क्रिया फोटोसाइटिक अभिक्रिया कहलाती है। इस क्रिया के द्वारा ही खराब मृदा का पी. एच. मान कम होता है। अतः हरी खाद के उपयोग से लवणीय एवं क्षारीय मृदाओं का सुधार ही होता है।

3. हरी खाद की फसलों के सड़ाव के समय कार्बन डाई आक्साइड गैस निकलती है, जो नमी (पानी) में घुलकर कार्बोनिक अम्ल बनाती है। यह अम्ल मृदा में विद्यमान अप्राप्य पोषक तत्वों को प्राप्य रूप में परिवर्तित कर देता है। जिससे आगामी फसलों के लिए मृदा में विद्यमान पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ जाती है।

सारणी : हरी खाद की फसलों की सस्य क्रियाएं एवं औसत उत्पादन क्षमता						
क्र.सं.	फसल का नाम	बोआई का समय	फसलों की औसत उत्पादन क्षमता			
			बीज पद (किग्रा./है.)	हरे पदार्थ की मात्रा (टन/है.)	नाइट्रोजन का प्रतिशत	प्राप्त नाइट्रोजन (किग्रा./है.
1.	सनई	अप्रैल से जुलाई	50–60	18–28	0.43	60–100
2.	ढैंचा	अप्रैल से जुलाई	40–50*	20–25	0.42	84–105
3.	लोबिया	अप्रैल से जुलाई	45–55	15–18	0.49	74–88
4.	उर्द	जून से जुलाई	20–22*	10–12	0.41	40–49
5.	मूंग	जून से जुलाई	20–22*	8–10	0.48	38–48
6.	ग्वार	अप्रैल से जुलाई	30–40	20–25	0.34	68–65
7.	ज्वार	अप्रैल से जुलाई	40–50	20	0.34	56
8.	सैंजी	अक्टूर से दिसम्बर	25–30	26–29	0.51	120–135
9.	बरसीम	अक्टूबर से नवम्बर	20–30	16	0.43	60
10.	मटर	अक्टूबर से नवम्बर	80–100	21	0.36	67
*ऊसर भूमि में 60 किग्रा0			**जायद (मार्च–अप्रैल) में 35–40 किग्रा0			

4 हरी खाद, कार्बनिक पदार्थ की आपूर्ति के साथ–साथ एक नाइट्रोजन प्रधान खाद भी है। साथ ही इसके उपयोग से मृदा को वे सभी पोषक तत्व प्राप्त हो जाते है जो फसलों के लिए अनिवार्य है। हरी खाद के उपयोग से मृदा सतह में पोषक तत्वों का एकत्रीकरण होता है तथा मृदा संरचना में सुधार होता है।

(पृष्ठ 04 का शेष)

रखनी चाहिए। वहीं पौधे से पौधे की दूरी 4 सेमी से 5 सेमी. तक होनी चाहिए। इसकी बुवाई 3–4 से.मी. गहराई से ज्यादा नही होनी चाहिए।

खाद एवं उर्वरक

सोयाबीन की फसल में रासायनिक उर्वरकों का उपयोग मिट्टी परीक्षण के आधार पर ही किया जाना चाहिए। रासायनिक उर्वरकों के साथ नाडेप खाद, गोबर खाद, कार्बनिक संसाधनों का अधिकतम (0–20 टन/हेक्टेयर) या वर्मी कम्पोस्ट 5 टन/हेक्टेयर उपयोग करें। संतुलित रसायनिक उर्वरक प्रबंधन के अंतर्गत संतुलित मात्रा 20:60 – 80:40:20 (नत्रजनः स्फुरः पोटाशः सल्फर) का उपयोग करें। संस्तुत मात्रा खेत में अंतिम जुताई से पूर्व डालकर भली–भांति मिट्टी में मिला देंवे। वहीं नत्रजन की पूर्ति हेतु आवश्यकता अनुरूप 50 किलोग्राम यूरिया का उपयोग अंकुरण के 7 दिन बाद करें। इसके अलावा जस्ता एवं गंधक की पूर्ति के लिए अनुशंसित खाद एवं उर्वरक की मात्रा के साथ जिंक सल्फेट 25 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर मिट्टी परीक्षण के अनुसार डालें।

सोयाबीन में सिंचाई

सोयाबीन की फसल खरीफ की फसल होने से इसमें सिंचाई की कम ही आवश्यकता पड़ती है। लेकिन यदि फ़ली भरने के समय कोई लंबा सूखा पड़ता है, तो एक सिंचाई की आवश्यकता होती है। वहीं इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि बरसात के दौरान खेत में जल का भराव नहीं होना चाहिए।

सोयाबीन की कटाई

सोयाबीन की फसल को पकने में 50 से 145 दिनों का समय लगता है जो उसकी किस्म पर निर्भर करता है। सोयाबीन की फसल जब परिपक्व हो जाती है तब उसकी पत्तियां पीली हो जाती हैं, और सोयाबीन की फली बहुत जल्दी सूख जाती है। कटाई के समय, बीजों में नमी की मात्रा लगभग 15 प्रतिशत होनी चाहिए।

सोयाबीन से प्राप्त उपज

सोयाबीन की उन्नत किस्मों का इस्तेमाल करके किसान इसकी 18–35 क्विंटल तक की औसत पैदावार प्राप्त कर सकते हैं। वहीं एम. ए.सी.एस. भारतीय वैज्ञानिकों दवारा विकसित सोयाबीन की नई किस्म एमएसीएस 1407 से प्रति हेक्टेयर में 39 क्विंटल की पैदावार पा सकते हैं। इसमें तेल की मात्र 19 प्रतिशत बताई गई है।

मक्का में ''फॉल आर्मी वॉर्म'' का प्रकोप एवं एकीकृत प्रबंधन

ध्रुवेंद्र सिंह सचान*, धीर प्रताप सिंह** एवं मनीष कुमार मौर्या***

उत्तर प्रदेश राज्य के कई जनपद जैसे लखनऊ, कानपुर, बाराबंकी, सीतापुर, गोरखपुर, सुल्तानपुर एवं अयोध्या में पाया गया कि, पिछले 2–3 वर्षों में मक्का की फसल पर फॉल आर्मी वॉर्म का प्रकोप बढ़ने लगा है। इससे किसानों की चिंताएं बढ़नी शुरू हो गई है। यह कीट इतना खतरनाक है कि, यदि मक्के की फसल पर इसका नियंत्रण ना किया जाए तो यह फसल को 100 प्रतिशत तक नुकसान पहुंचा सकता है।

फॉल आर्मी वॉर्म व्यापार मार्गों के माध्यम से अफ्रीका और एशिया में फैल गया है। भारतीय उपमहाद्वीप में सबसे पहले मई 2018 में इस विनाशकारी कीट की मौजूदगी कर्नाटक में दर्ज की गई थी और तब से अब तक यह पश्चिम बंगाल तथा गुजरात समेत कई राज्यों तक पहुँच चुका है। उचित जलवायु परिस्थितियों के कारण यह न केवल पूरे भारत में बल्कि एशिया के अन्य पड़ोसी देशों में भी फैल सकता है। कर्नाटक राज्य भारत में सबसे बड़े मक्का उत्पादकों में से एक है और मक्का देश में व्यापक रूप से उत्पादन किया जाने वाला तीसरा अनाज है। इस कीट का वैज्ञानिक नाम स्पोडोप्टेरा फ्रूजीपेरडा है। इसको सैनिक कीट के नाम से भी जानते हैं।

जीवन चक्रः

इसका अधिक प्रकोप होने पर मक्का की फसल को भारी नुकसान हो सकता है। इस कीट की व्यस्क मादा मोथ पौधों की पत्तियों और तनों पर अण्डे देती है। एक बार में मादा 50 से 200 अण्डे देती है। मादा अपने 20–21 दिनों के जीवनकाल में 10 बार यानी 2000 तक अण्डे दे सकती है। ये अण्डे 3 से 4 दिन में फूट जाते हैं तथा इनसे जो लार्वा निकलते है वो 14 से 22 दिन तक इस अवस्था में रहते हैं। कीट के लार्वा के जीवन चक्र की तीसरी अवस्था तक इसकी पहचान नहीं की जा सकती है परन्तु चौथी अवस्था में लार्वा के सिर पर अंग्रेजी के उल्टे 'वाई' आकार का सफेद निशान दिखाई देता है। प्यूपा इस कीट की अगली अवस्था है। इस कीट के प्यूपा गहरे भूरे से काले रंग का होता है। यह अवस्था मात्र 7 से 13 दिन तक की होती है तथा इसके बाद पुनः नर व मादा मोथ बनते हैं। नर मोथ के पंखों पर सफेद निशान होते है जबकि ये निशान मादा मोथ के पंखों पर नहीं होते हैं। इस प्रकार फॉल आर्मी वॉर्म का जीवन चक्र 30–61 दिनों का होता है।

नुकसान कैसे पहुंचाता है?

इस कीट के लार्वा पौधो ंकी पत्तियों को खुरच कर खाते है जिससे पत्तियों पर सफेद धारियाँ दिखाई देती हैं। जैसे–जैसे लार्वा बड़ा होता है, पौधों की ऊपरी पत्तियों को खाता है और बाद में भुट्टे में घुसकर अपना भोजन प्राप्त करता है तथा वही मल त्यागता है। पत्तियों पर बड़े बड़े गोल आकार के छिद्र नजर आते हैं। ज्यादा अधिक प्रकोप होने पर यह कीट पूरी पत्तियां ही खा जाता है। मक्के की फसल में लार्वा द्वारा त्यागा मल भी पौधों पर नजर आता है।

यह कीट बहु फसल भक्षी है जो अन्य कई फसलों को भी नुकसान पहुँचाता है। अगर समय रहते फॉल आर्मी वॉर्म कीट की पहचान कर इस पर नियंत्रण नहीं किया गया तो आने वाले समय में मक्का एवं अन्य फसलों में भारी तबाही हो सकती है। मक्का की फसल के लिए लारवल अवस्था सबसे हानिकारक होती है। इसलिए इसका नियंत्रण करना अतिआवश्यक है। नियंत्रण समय पर किया जाना आवश्यक हैं, अन्यथा मक्के की फसल चौपट हो सकती है।

फॉल आर्मी वॉर्म का एकीकृत नाशीजीव प्रबंधन

- समय पर व जल्दी बुवाई कर कीट संक्रमण से मक्के के पौधों को बचाया जा सकता है।
- गहरी जुताई करने पर प्यूपा सूर्य के संपर्क पर आते ही नष्ट हो जाते है।
- मक्के को चने व मूंग के साथ बुआई कर कीट से बचा जा सकता है।

(शेष पृष्ठ 20 पर)

*एमएससी. कृषि, कृषि विभाग, इंटीग्रल विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.), **प्रयोगशला प्रशिक्षक, कृषि विभाग, इंटीग्रल विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.)
***विषय वस्तु विशेषज्ञ (पौध संरक्षण) कृषि विज्ञान केन्द्र, मनकापुर, गोण्डा (उ.प्र.)

ए.डब्ल्यू. डी.: धान में सिंचाई की नवीन पद्धति

शशांक शेखर*, नरेन्द्र प्रताप* एवं जे. पी. सिंह*

धान (ओरिजा सैटिवा) दुनिया की आधी से अधिक आबादी के लिए एक प्रमुख भोजन है। लगभग 700 मिलियन टन सालाना उत्पादन के साथ ही वैश्विक स्तर पर इसकी खेती 158 मिलियन हेक्टेयर में की जाती है। एशियाई देश (जैसे भारत, चीन, आदि) उपलब्ध मीठे पानी के लगभग 40 प्रतिशत का उपयोग करके वैश्विक धान उत्पादन में लगभग 90 प्रतिशत का योगदान करते हैं। आमतौर पर, किसान धान की खेती निरंतर बाढ़ सिंचाई विधि (अधिकांशतः धान की वृद्धि अवधि में लगभग 5 से 20 सेमी. स्थिर जल भराव की स्थिति बनाये रखते है) के माध्यम से करते हैं। धान की फसल अवधि में लगभग 50 से 300 सेमी. सतही जल भराव की आवश्यकता होती है। इसमें से लगभग 20 से 50 प्रतिशत जल धान की खेती के लिए जरुरी है और बाकी लगभग 50 से 80 प्रतिशत जल अपवाह, गहरा अंतःस्रवण द्वारा भूमिगत जल में एवं वाष्पोत्सर्जन के रूप में वायुमंडल में मिल जाता है। शोध से पता चला है कि एक टन धान उत्पादन के लिए लगभग 2.5 मिलियन लीटर पानी और 15 से 20 किग्रा. नाइट्रोजन, 5 से 11किग्रा. फास्फोरस और 15 से 30 किग्रा. पोटैशियम की आवश्यकता होती है, साथ ही मीठे पानी की शीघ्रता से कमी के कारण लगभग 17 मिलियन हेक्टेयर धान की खेती में पानी की कमी पायी गयी है, और यह 2025 तक 22 मिलियन हेक्टेयर तक पहुंचने की संभावना है।

भूजल और उपजाऊ भूमि की कमी के कारण धान की खेती को करना एक बड़ी चुनौती बन गई है, विशेषकर जब धान की मांग बढ़ रही है। खाद्य और कृषि संगठन के अनुसार, 2050 तक धान के उत्पादन में 70 प्रतिशत तक की वृद्धि का लक्ष्य रखा है जिससे वैश्विक जनसंख्या की भोजन की मांग को पूरा किया जा सके। निरंतर बाढ़ सिंचाई विधि को सिंचाई जल संचयन की विधियों जैसे; सिस्टम आफ राइस इन्टेन्सिफिकेशन (स्री : एस. आर. आई.), बंडप्लगिंग, एरोबिक राइस सिस्टम और अल्टरनेटवेटिंग एंडड्राइंग (वैकल्पिक गीला और सुखा : ए. डब्ल्यू. डी.) के साथ प्रतिस्थापित करने की आवश्यकता है। उक्त जल संचयन की विधियों के बीच, ए. डब्ल्यू. डी. सिंचाई पद्धति, दुनियाभर के उन क्षेत्रों में जहां धान की खेती के लिए पानी की उपलब्धता कम है, व्यापक रूप से अपनाई जाने वाली विधियों में से एक है।

ए. डब्ल्यू. डी. सिंचाई पद्धति में खेत को बारी–बारी से सिंचित और सुखाया जाता है। ए. डब्ल्यू. डी. सिंचाई पद्धति में हमेशा निरंतर जल बनाए रखने की आवश्यकता नहीं होती है, सिंचाई तब किया जाता है जब मिट्टी का पानी अपने पूर्व–निर्धारित सीमा मान पर पहुँच जाता है। निर्धारित सीमा मान उस बिंदु पर तय किया जाता है जहां अनाज की उपज से समझौता किए बिना पानी की बचत अधिक होतीहै। धान की फसल में सुखाने का चरण 1 से 10 दिन और उससे भी ज्यादा हो सकता है, यह मिट्टी के प्रकार, फसल वृद्धि, मौसम के मापदंडों आदि पर निर्भर करता है। ए. डब्ल्यू. डी. सिंचाई पद्धति कई तरह से किया जा सकता है, जैसे कि निश्चित दिनों की संख्या पर, छिद्रित पाइप (परफोरेटेड वाटर ट्यूब) विधि से और जड़ क्षेत्र में मृदा मैट्रिक संभावित शीर्ष विधि से (टेंसियोमीटर)। इन सभी विधियों में से छिद्रितपाइपविधि सबसे सस्ती, टिकाऊ और लोकप्रिय है।

ए. डब्ल्यू. डी. सिंचाई पद्धति का क्रियान्वयन

ए. डब्ल्यू. डी. सिंचाई पद्धति में छिद्रित पाइप विधि सुरक्षित, आसान एवं व्यावहारिक रूप से अपनाने योग्य है। इस पद्धति को अन्तर्राष्ट्रीय चावल अनुसंधान संस्थान द्वारा विकसित किया गया है। छिद्रित पाइप पी. वी. सी. पाइप या बांस का होता है जिसका व्यास 15 सेमी. और लंबाई 30 सेमी. (15सेमी. छिद्रित और 5 सेमी. बिना छिद्रित) है। छिद्र का व्यास लगभग 1 सेमी. होता है और प्रत्येक छिद्र के बीच की दूरी लगभग 1 से 5 सेमी. होती है जो मिट्टी और फसल की विविधता पर निर्भर करता है। इसका उपयोग जमीन की सतह के नीचे जल स्तर को मापने के लिए किया जाता है। शोध से पता चला है कि अगर धान के खेत में 2 से 5 सेमी.

*कृषि विज्ञान केंद्र, आकुंशपुर, गाजीपुर, उत्तर प्रदेश, भारत

की सिंचाई की जाए तो धान के पौध की गुणवत्ता एवं उपज में वृद्धि होती है। ए. डब्ल्यू. डी. धान के खेत में 5 सेमी. की सिंचाई तब करें जब धान के खेत का पानी छिद्रित पाइप में से समाप्त हो जाए। इस पद्धति को केवल कल्ले निकलने की अवस्था (रोपण के 15 से 20दिन बाद) से पुष्पन अवस्था (रोपण के 60 से 70 दिन बाद) के मध्य ही करना चाहिये। बाकी की अवधि (रोपण के 10 से 15 और 7 से 10 दिन बाद) के दौरान निरंतर बाढ़ सिंचाई विधि का पालन करने की आवश्यकता होती है, ताकि धान की उपज में कोई कमी न हो। साथ ही नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटैशियम युक्त उर्वरकों का प्रयोग तब करना चाहिये जब धान के खेत में नमी पर्याप्त हो।

छिद्रित पाइप को लगाने की तकनीकी

- पाइप का व्यास और लंबाई 15 और 30 सेमी. होता है और इस पाइप को भूमि में इस प्रकार से स्थापित करते है कि पाइप का 15 सेमी. बिना छिद्रित भाग ऊपर और 15 सेमी. छिद्रित भाग सतह के नीचे खेत में स्थापित रहे।
- छिद्र (वेध) का व्यासलगभग1सेमी. होना चाहिए और प्रत्येक छिद्र के बीच की दूरी1 से 5 सेमी. तक रखा जाता है।
- छिद्रित पाइप को जाली और नारियल जटा जैसे सामग्री के साथ कवर करें जिससे छिद्र अवरुद्ध न हो।
- जमीन की सतह पर 20सेमी. व्यास और 20 सेमी. गहरा गड्ढा बनाकर इसमें 5 सेमी. ऊँचाई तक मोटी रेत भरें।
- मोटी रेत के ऊपर छिद्रित पाइप को रखें और फिर गीली मिट्टी से भर दें।
- छिद्रित पाइप की स्थापना के बाद उसमें से कीचड़ को हटा देना चाहिए, जिससे धान के खेतमें जल के स्तर का अनुमान लगाया जा सके।
- ए.डब्ल्यू. डी. तकनीकी की जांच के लिए धान के खेत में सिंचाई करते समय यदि पाइप के अंदर और बाहर पानी का स्तर समान हो तो छिद्रित पाइप की स्थापना ठीक तरीके से हुयी है।

ए.डब्ल्यू. डी. सिंचाईपद्धति के लाभ

- ए.डब्ल्यू. डी. सिंचाई पद्धति धान उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना लगभग 23 से 27 प्रतिशत सिंचाई का पानी बचाता है।
- इसमें जल उपभोग क्षमता, निरंतर बाढ़ सिंचाई विधि की तुलना में लगभग15 से 20 प्रतिशत की वृद्धि होतीहै।
- इस सिंचाई पद्धति द्वारा बायोमास, कल्लों की संख्या, पौधों की ऊँचाई, दाना भरने की दर, जड़ वृद्धि के साथ ही साथ उपज भी बढ़ता है।
- इस सिंचाई पद्धति में ग्रीन हाउस गैसेस जैसे; मीथेन (CH_4) और नाइट्रसऑक्साइड (N_2O) का उत्सर्जन कम होता है, और साथ ही साथ यह कीटों और रोगों के प्रकोप को भी कम करता है।
- इस पद्धति द्वारा ईंधन एवं बिजली व्यय को कम करके सिंचाई लागत को भी कम कर सकते हैं, जिसके फलस्वरुप उत्पादन लागत में कमी होती है।
- इस पद्धति में यांत्रिक उपकरण को आसानी से चलाया जा सकता है जिससे श्रम लागत में बचत होती है।
- यह पद्धति मृदा संरचना में सुधार करती है, जिससे खेत की ऊर्वरा शक्ति एवं जल धारण क्षमता में वृद्धि होती है। इसलिए किसानों को शुद्ध लाभ अधिक होता है।
- इसका उपयोग सिंचित क्षेत्र में करने पर लगभग 230 से 310 अरब लीटर सिंचाई जल बचाया जा सकता है जिसका उपयोग उक्त क्षेत्र के अन्य फसलों की सिंचाई के लिए किया जा सकता है।

स्रोत–

- एग्री कल्चर कारपोरेशन एंड फार्मर्स वेलफेयर–2019
- हाइड्रस–1डी मॉडल फॉर सिम्युलेटिंग वाटर फ्लोथ्रु पैडी सॉइल्स अंडर अल्टर नेटवेटिंग एंड ड्राइंग इरीगेशन प्रैक्टिस–2019
- फूड एंड एग्रीकल्चर आर्गेनाइजेशन–2020
- इंटरनेशनल राइस रीसर्च इंस्टिट्यूट–2015

कृषक उत्पादक संगठन (एफ0पी0ओ0)

अनिल कुमार*, ए.पी. राव** एवं शशांक शेखर सिंह*

आज यह धारणा प्रबल होती जा रही है कि खेती घाटे का उद्यम है। अब प्रश्न उठता है कि बाजार में तो खाने पीने की वस्तुए जो बिकती हैं काफी महंगी होती हैं और बनती किसान द्वारा किये गये उत्पादन से ही है, फिर भी किसान भाइयों को अपने उत्पादन का लाभ क्यों नहीं मिलता है? इसका उत्तर है कि हमारे किसान भाई उत्पादक तो हैं लेकिन वह जागरूक होकर अभी उद्यमी या व्यवसायी नहीं बने हैं।

खेती–बाडी में केवल अच्छा उत्पादन एवं उत्पादकता प्राप्त कर लेना किसान की आर्थिक समृद्वि की गारंटी नहीं होती है। किसानो ं को अपने उत्पाद का उचित मूल्य प्राप्त करने के लिए उत्पादन के बाद समुचित भण्डारण, मूल्य संवर्द्वन के लिए सफाई, छनाई, श्रेणी करण, प्रसंस्करण जैसे ताजा जमे हुए, सुखाने, पाउडरिंग, कैनिंग, लेबनिंग और विपणन व्यवस्था पर ध्यान देना होगा। इसलिए किसानों को कृषक उत्पादक संगठन के माध्यम से संगठित होने की आवश्यकता है।

किसान को खेती बाड़ी में आने वाली प्रमुख समस्यायें निम्न हैं:–

1. किसानों के पास–छोटी–छोटी जोत है। आने वाले समय में पीढी दर पीढी ये जोते और छोटी होती जायेंगी। छोटी जोत के कारण खेती बाडी के लिए सभी व्यवस्थाये करने में कठिनाई आती है।
2. किसान के पास सीमित आर्थिक संसाधन या पूंजी की कमी के कारण सभी निवेशों की समय पर व्यवस्था करना कठिन होता है।
3. स्थानीय स्तर पर भण्डारण, मूल्य संवर्द्वन एवं प्रसंस्करण की सुविधा का अभाव।
4. उत्पादन बिक्रय के लिए बिचौलियों पर निर्भरता बाजार की समझ का अभाव।
5. किसान तक बाजार भाव संबन्धी सूचना एवं तकनीकी का न पहुॅच पाना।

बड़ी बड़ी कम्पनियाँ (कोकाकोला, वालमार्ट, स्पेन्सर आदि) जो अपने देश में व्यापार करती हैं, का नाम सुना होगा। ये सारी कम्पनियां भारत सरकार द्वारा बनाये गये कम्पनी अधिनियम 1956 के अर्न्तगत संचालित होती हैं और भारत सरकार के कम्पनी रजिस्ट्रार द्वारा नियंत्रित होती हैं। इस कम्पनी अधिनियम के अर्न्तगत सरकार द्वारा अपने किसानों को भी अपनी स्वयं की कम्पनी बनाकर व्यवसाय करने का अवसर प्रदान किया गया है।

आवश्यकता है कि इन किसानों को संगठित करके उनकी इन समस्याओं का निदान किया जाये ''कृषक उत्पादक संगठन'' (फार्मर्स प्रोड्यूसर आर्गनाइजेशन) इसी कड़ी में एक प्रयास है। अगर सीधे शब्दों में कहे तो अब किसान हमारा उत्पादक ही नहीं अपितु वह किसान के साथ–साथ व्यापरी के रूप में स्थापित हो सकता है।

कृषक उत्पादक संगठन ''कम्पनी अधिनियम, 1956'' के अर्न्तगत एक पंजीकृत संस्था है। जिसके निश्चित उद्देश्य और गतिविधियां होती हैं। हमारे किसान भाई कैसे अपनी स्वयं की फार्मर्स प्रोड्यूसर कम्पनी बना सकते हैं, इसके लिए उन्हें एक चरणबद्व प्रक्रिया अपनानी होती है। सबसे पहले उनको छोटे–छोटे फार्मर्स प्रोड्यूसर ग्रुप या उत्पादक समूह बनाने की जरूरत होती है। उत्पादक समूह एक ऐसे किसानों का समूह है जो एक समान उत्पादन कर रहे हैं। जैसे कई कृषक अनाज, दलहन, तिलहन, सब्जी, फल–फूल उत्पादन, मुर्गी पालन, पशुपालन, मछलीपालन आदि कार्य में संलग्न है। एक ही प्रकार की गतिविधियों से जुडे हुए कृषक जो कार्य कर रहे हैं उनका उत्पादक समूह बनाया जा सकता है। समूह के सारे सदस्य मिलकर के कृषि निवेश व्यवस्था, उत्पादन, भण्डारण और उत्पाद बेचने का कार्य करेगे और इन समूहों के गठन और संचालन के लिए कुछ सामान्य से नियम बना लेने चाहिए जैसे– उनकी नियमित बैठक करना, बैठकों की कार्यवाही को लिपिबद्ध करना, समूहों की बचतों को इकट्ठा करना और उसका ब्योरा रखना और उसको बैंक में जमा करना। इस तरह से उत्पादक समूह अपनी गतिविधियां संचालित करेगे।

इस प्रकार 10–15 कृषक परिवारों को लेकर एक कृषक उत्पादक समूह बनाया जा सकता है और इस प्रकार के चार–पॉच या इससे अधिक समूह एक गॉव में बनाये जा सकते है। इस प्रकार से 15–20 ग्रामों में ऐसे समूह बनाकर लगभग 1000 किसानों को इकट्ठा किया जा सकता है और इन 1000 किसानों की संख्या

*विषय वस्तु विशेषज्ञ (प्रक्षेत्र प्रबन्धन) **निदेशक प्रसार, प्रसार निदेशालय, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या, उ.प्र.

होने के बाद एफ0पी0ओ0 के गठन की ओर आसानी से कदम बढाया जा सकता है। यह आवश्यक नहीं है कि संख्या 1000 ही हो यह संख्या कम अथवा अधिक भी हो सकती है। लेकिन जितनी ज्यादा संख्या हो संगठन के लिए उतना ही अच्छा रहता है। सभी उत्पादक समूहों की एक बैठक करके प्रत्येक सदस्य को शेयर होल्डर अथवा् अंश धारक बनाने के लिए प्रेरित करना चाहिए। अर्थात उसको कुछ धनराशि एफ0पी0ओ0 के गठन के लिए अंश के रूप में जमा करनी होती है। इस प्रकार से 1.5 से 5 लाख रू0 की धनराशि जमा करना एफ0पी0ओ0 के पंजीकरण के लिए आवश्यक है। इसके पश्चात् एफ0पी0ओ0 के गठन के लिए न्यूनतम 10 या अधिक कृषक संगठन इकट्ठा करके कृषकों की कम्पनी को बनाया जा सकता है।

फार्मर्स प्रोड्यूसर कम्पनी का गठन एवं पंजीकरण :– कम्पनी अधिनियम 1956 की धारा 581 सी में फार्मर्स प्रोड्यूसर कम्पनी के गठन एवं पंजीकरण के प्राविधान वर्णित है फार्मर्स प्रोड्यूसर कम्पनी बनाने की चरणबद्ध प्रक्रिया को बिन्दुवार निम्नवत् समझा जा सकता है:–

10 या अधिक व्यक्तियों द्वारा मिलकर जो उत्पादक हो या कोई दो या दो से अधिक उत्पादक संस्थान या 10 या अधिक व्यक्तियों अथवा उत्पादक संस्थानों द्वारा मिलकर पंजीकरण हेतु न्युनतम मूलभूत आवश्यकतायें:–

- 10 चयनित सदस्य जिनमें 5 बोर्ड ऑफ डायरेक्टर सम्मिलित है। न्यूनतम प्रदत्त पूँजी (Paid up capital) एक लाख रूपये।
- पंजीकृत की जाने वाली कम्पनी के कार्यालय का भारत में पता।
- कम्पनी के नामित निदेशक मण्डल के सदस्यों पैन एवं आधार की प्रति एवं पासपोर्ट साइज फोटोग्राफ।
- निदेशक मण्डल के सदस्यों की बैंक पासबुक की फोटो प्रतियॉ।
- कृषि जन्य आय का तहसीलदार/एस0डी0एम0 या जिला कृषि अधिकारी/उप कृषि निदेशक द्वारा जारी प्रमाण पत्र।
- प्रस्तावित कम्पनी के कार्यालय का पता सम्बन्धी साक्ष्य (बिजली/टेलीफोन बिल/रजिस्ट्री/किराया एग्रीमेन्ट की प्रति आदि)
- निदेशक मण्डल के सदस्यों का पूर्ण विवरण। (नाम, पता, आयु, शैक्षिक योग्यता आदि तथा उनका न्यूनतम 25 सेकेण्ड का वीडियो।)
- निवेशकों/अन्य सदस्यों का विवरण।
- कम्पनी का प्रस्तावित नाम (न्यूनतम 03 नाम प्रस्तावित करने होंगे।) पंजीकरण प्रक्रिया पंजीकृत कराने के लिए योग्य चार्टेड एकाउन्टेन्ट/कम्पनी सचिव की आवश्यकता होती है।

एफ0पी0सी0 पंजीकृत की चरणबद्ध प्रक्रिया निम्नवत् होती है :–

- एफ0पी0सी0 के नाम के अनुमोदन हेतु ROC में प्रार्थना पत्र दाखिल किया जाना।
- 10 BOD/Promoter के लिए डिजिटल सिग्नेचर कापी (DSC) हेतु प्रार्थना पत्र।
- कम्पनी का मेमोरेन्डम ऑफ एशोसिएशन (MoA) तथा आर्टिकल ऑफ एशोसिएशन (AoA) तैयार करना।
- निदेशको की सहमति का पत्र (DIR-2 फार्म)
- सी0ए0/सी0एस0 के हस्ताक्षर से स्पाइस+ (Spice+) के माध्यम से पंजीकरण हेतु आवेदन करना।
- FPC का पंजीकरण कराने के लिए दस्तावेज तैयार करना चार्टेड एकाउन्टेन्ट की फीस, स्टाम्प शुल्क, पंजीकरण शुल्क आदि में लगभग 40,000 रू0 व्यय आता है।

आवेदन के उपरान्त कम्पनी को पंजीकृत करते हुए निम्न दस्तावेज कम्पनी के लिए जारी किये जाते है।

1. कम्पनी के पंजीकरण का प्रमाणपत्र
2. कम्पनी का DIN (Director Identification Number)।
3. परमानेन्ट एकाउन्ट नम्बर (PAN)
4. टैक्स डिडक्शन एकाउन्ट नम्बर (TAN)
5. कर्मचारी भविष्य निधि (EPF)
6. कर्मचारी बीमा (ESI)
7. कम्पनी का बैंक खाता संख्या (अनन्तिम) पंजीकरण उपरान्त कार्यवाही
8. कम्पनी के कार्यालय की स्थापना, आफिस के बोर्ड सहित।
9. शेयर आवंटन हेतु ROC का प्रार्थना पत्र।
10. 30 दिन के अन्दर बोर्ड ऑफ डायरेक्टर की पहली बैठक।
11. कम्पनी की सामान्य सभा की बैठक एवं आडिटर की नियुक्ति 90 दिनों के अन्दर।

आडिटर की नियुक्ति के लिए फार्म ADT-1 पर आवेदन। जी0एस0टी0 के लिए आवेदन।

पपीता के प्रमुख रोग एवं उनका निदान

उमेश बाबू*, सी.पी.एन. गौतम** एवं रामजीत***

पपीते का कृषि में प्रमुख स्थान है। पपीते में 20 से अधिक रोगों का आक्रमण होता है, जिनमें कवक एवं विषाणु जनित रोग प्रमुख हैं। हमोर राज्य में सबसे अधिक समस्या विषाणु जनित रोगों की है जिसके कारण किसान पपीते की खेती में कम रूचि ले रहे हैं।

कवक जनित रोगः

आर्द्र गलन (डैम्पिंग आफ): यह पौधशाला में लगने वाला गम्भीर रोग है जिससे काफी हानि होती है। इसका कारक कवक पीथियम एफैनिडरमेटम है जिसका प्रभाव नये अंकुरित पौधों पर होता है। इस रोग में पौधे का तना प्रारम्भिक अवस्था में ही गल जाता है और पौधा मुरझाकर गिर जाता है।

नियंत्रण के उपायः

- पौधशाला में जल निकास का उचित प्रबंध होना चाहिए एवं इसके लिए पौधशाला की उँचाई आस–पास की सतह से ऊपर होनी चाहिए जिससे जल जमाव न हो।
- नर्सरी की मिट्टी का उपचार फार्मेल्डिहाइड के 2.5 प्रतिशत घोल से करने के बाद 48 घंटे तक पॉलीथीन सीट से ढ़क देना चाहिए।
- बीजोपचाार कार्बेन्डाजिम अथवा मेटालैक्सिल + मेन्कोजेब के मिश्रण से 2 ग्राम/किलो बीज की दर से करें।
- पौधशाला में लक्षण दिखते ही मेटालैक्सिल + मेन्कोजेब के मिश्रण का 2 ग्राम/लीटर पानी से छिड़काव करें।

तना तथा जड़ सड़न रोग (कालर रॉट): इस रोग में तने के निचले भाग के छाल पर जलीय (गीले) चकत्ते बनते हैं जो बाद में बढ़कर तनों के चारो तरफ से घेर लेते हैं। तने का उपरी छिलका पतला होकर गलने लगता है। ऊपरी पत्तियाँ मुरझाकर पीली हो जाती हैं, और पत्तियाँ गिर जाती हैं। रोगी पौधे में फल नही बनते हैं और यदि बन जाते हैं तो गिर पड़ते हैं। तने के आधार सड़ जाने के कारण पूरा पौधा टूटकर गिर जाता है। इस कारण जमीन के नीचे जड़ें गलने लगती हैं। पौधे की पत्तियाँ पीली पड़ने लगती है और असमय ही नीचे गिरना आरम्भ कर देती है। बाद में सारी पत्तियाँ गिर जाती है और पौधा गलकर जमीन पर गिर जाता है।

नियंत्रणः

- बगीचे में जल निकास का उचित प्रबंध होना चाहिए।
- रोगी पौधों को जड़ सहित उखाड़कर जला देना चाहिए, और रोगी पौधों के स्थान पर दूसरे नये पौधे नही लगाना चाहिए।
- जून, जुलाई और अगस्त के महीने में पौधों पर आधार से 50 से.मी. की ऊँचाई तक बोर्डो मिश्रण लगाने से रोग से बचा जा सकता है।
- यदि तने में धब्बे दिखाई देते हों तो (मेटालैक्सिल + मेन्कोजेब) का घोल बनाकर 2 ग्राम/लीटर पानी की दर से पौधे के तने के पास मिट्टी में छिड़काव करना चाहिए।

फल सड़न रोगः यह पपीते के फल का प्रमुख रोग है। इसके कई कवक कारक हैं जिसमें कोलेटोट्रोईकम ग्लियोस्पोराइड्स प्रमुख है। अधपके एवं पके फल रोगी होते है। इस रोग में फलों के उपर छोटे गोल गीले धब्बे बनते हैं। बाद में ये बढ़कर आपस में मिल जाते हैं तथा इनका रंग भूरा या काला हो जाता हैं। यह रोग फल लगने से लेकर पकने तक लगता है जिसके कारण फल पकने से पहले ही गिर जाते हैं।

नियंत्रणः

- कापर आक्सीक्लोराईड 2.0 ग्राम/लीटर पानी में या मेन्कोजेब 2.5 ग्राम/लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करने से रोग में कमी आती है।
- बगीचे में जल निकास का उचित प्रबंध होना चाहिए।

*वैज्ञानिक, आनुवांशिकी एवं पादप प्रजनन कृषि विज्ञान केन्द्र, श्रावस्ती, **वैज्ञानिक पादप सुरक्षा कृषि विज्ञान केन्द्र, हरदोई एवं ***वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष कृषि विज्ञान केन्द्र, अम्बेडकर नगर

- रोगी पौधों को जड़ सहित उखाड़कर जला देना चाहिए, और रोगी पौधों के स्थान पर दूसरे नये पौधे नही लगाना चाहिए।

कली एवं फल के तनों का सड़ना: यह पपीता में लगने वाली एक नई बीमारी है जो फ्यूजैरियम सोलनाई नामक कवक के द्वारा लगती है। शुरु में इस रोग के कारण फल तथा कलिका के पास का तना पीला हो जाता है जो बाद में पूरे तने पर फैल जाता है। जिसके कारण फल सिकुड़ जाते हैं तथा बाद में झड़ जाते हैं।

नियत्रण: इसकी रोकथाम के लिए कॉपरआक्सी क्लोराइड (2 ग्राम प्रति लीटर पानी मे) का छिड़काव करना चाहिए।रोगी पौधों को उखाड़कर जला देना चाहिए। पपीते के बगीचे के आस–पास कद्दू कुल के पौधे नही होने चाहिए।

चूर्णी फफूंद: यह रोग ओडियम यूडिकम एवं ओडियम कैरिकी नामक कवक से होता है। इससे प्रभावित पत्तियों पर सफेद चूर्ण जैसा जमाव हो जाता है जो बाद में सूख जाती हैं।

नियत्रण:

- इस रोग की रोकथाम के लिए घुलनशील सल्फर (2 ग्राम प्रति लीटर पानी में) का छिड़काव करना चाहिए।
- रोगी पौधों को उखाड़कर जला देना चाहिए।
- पपीते के बगीचे के आस–पास कद्दू कुल के पौधे नही होने चाहिए।

रिंग स्पाट रोग: पपाया वलय चित्ती विषाणु इस रोग का कारक है। इस रोग में पपीते की पत्तियाँ कटी फटी सी हो जाती हैं तथा हर गॉठ पर कटे फटे पत्ते निकलते हैं। पत्तियों के तने तथा फलों पर छोटे गोलाकार धब्बे बन जाते हैं और पौधे की वृद्धि रूक जाती है। पत्ती का डंठल छोटा हो जाता है और पुरानी पत्तियाँ गिर पड़ती है। पत्तियाँ छोटी खुरदरी तथा फफोलेदार हो जाती है। फूल काफी कम लगते हैं, एवं फल का आकार स्वस्थ पौधों की तुलना में काफी कम हो जाता हैं। इस रोग से इस राज्य में पपीते की खेती काफी सीमित होती जा रही है। अगर पहले वर्ष के फल में रोग के लक्षण दिखते है, तो फल तोड़ने के बाद पौधों को उखाड़ देना चाहिए।

बरसात के मौसम में इस किस्म में विषाणु (वाइरस) रोग लगता है जिससे फल का आकार प्रकार विकृत हो जाता है। इससे बचने के लिए खेत के ढंग मे परिवर्तन कर देने से यह रोग नहीं लगता है। इसके लिए सितम्बर माह में बीज नर्सरी या गमलों में बोने चाहिए तथा अक्टूबर–नवम्बर तक पौधे खेत में लगा देने चाहिए। इस तरह प्रथम बरसात का समय रोग मुक्त रखने के लिए बच निकलता है। जाड़े तथा गर्मी में पौधे मजबूत एवं सहनशील हो जाते हैं। अतः अगले वर्ष बरसात होते ही पपीते के पौधे काफी मात्रा मे फल–फूल देना प्रारंभ कर देते हैं। अगली बरसात में विषाणु रोग का थोड़ा बहुत प्रकोप होने पर भी फल के गुणों पर कोई खास बुरा प्रभाव नहीं पड़ता है।

नियंत्रण:

- रोगी पौधों को उखाड़कर जला देना चाहिए।
- माहूँ के नियंत्रण के लिए डाइमेथेएट 1 मिली/लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें।
- पपीते के बगीचे के आस–पास कद्दू कुल के पौधे नही होने चाहिए।
- नीम की खली एवं नीम के तेल का प्रयोग करने से भी रोग में कमी आती है।
- वर्षा ऋतु के समाप्ति के बाद पपीता का बाग लगाने पर यह रोग कम दिखाई देता है।

पर्ण कुंचन रोग: यह पपीते का एक गंभीर विषाणु रोग है। इस रोग के कारण शुरु में पौधों का विकास रुक जाता है और पत्तियाँ गुच्छा नुमा हो जाती हैं तथा पतियों का आकार छोटा हो जाता है। पत्तियों का उपरी सिरा अन्दर की ओर मुड़ जाता है। प्रभावित पौधों में फूल एवं फल नही लगते हैं।

नियंत्रण:

- सफेद मक्खी के नियंत्रण के लिए डाइमेथेएट 1 मिलीलीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें।
- रोगी पौधों को उखाड़कर जला देना चाहिए।

किसानों की आय दोगुनी करने के लिए दुग्ध उत्पादन व्यवसाय

आनन्द जायसवाल*, रितेश सिंह** एवं तारकेश्वर*

भारत मे दुग्ध उत्पादन लगभग 1500 ईसा पूर्व से किया जा रहा है लेकिन पहले हमारे देश मे दुग्ध का उत्पादन किसान केवल अपने उपभोग के लिए ही करते थे, परंतु वर्तमान मे भारतीय किसान दुग्ध उत्पादन को एक व्यापरिक व्यवसाय के रूप मे अपना कर अधिक लाभ प्राप्त कर रहे है।

गत वर्ष 2020–21 मे विश्व का कुल दुग्ध उत्पादन लगभग 906 मिलियन टन और भारत मे दुग्ध का कुल उत्पादन लगभग 209.96 मिलियन टन रहा। दुग्ध उत्पादन की दृष्टि से भारत का विश्व मे प्रथम स्थान है। उत्तर प्रदेश, भारत मे सबसे ज्यादा दुग्ध उत्पादित करने वाला राज्य है एवं 2019–20 मे उत्तर प्रदेश का कुल दुग्ध उत्पादन लगभग 30.52 मिलियन मीट्रिक टन रहा है, जो कि भारत के कुल दुग्ध उत्पादन मे लगभग 18 प्रतिशत योगदान देता है।

विश्व मे भारत का प्रथम स्थान होने के बावजूद प्रतिदिन प्रति पशु औसत दुग्ध उत्पादकता केवल 5.10 लीटर है जिसमे स्वदेशी पशुओं की औसत उत्पादकता प्रतिदिन प्रति पशु 3.1 लीटर ही है।

दुग्ध उत्पादन व्यवसाय शुरू करने से पूर्व ध्यान रखने योग्य बातेः दुग्ध उत्पादन पशुधन पर निर्भर करता है। अतः दुग्ध उत्पादक (किसान) को दुग्ध उत्पादन व्यवसाय शुरू करने से पहले यह अवश्य सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि किस प्रकार के पशु (गाय, भैंस या अन्य मवेशी) एवं उन पशुओं की कौन सी नस्ल ज्यादा लाभप्रद होगी।

दुग्ध उत्पादक को दुग्ध उत्पादन के लिए अच्छी नस्ल के पशुओं का चयन करना चाहिए जिनकी दुग्ध उत्पादन क्षमता काफी अधिक हो एवं उन पशुओं को किस तरह का आहार प्रदान किया जाना चाहिए, इस बिषय पर उत्पादक को अच्छी जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिए जो दुग्ध उत्पादन व्यवसाय शुरू करना चाह रहे है।

पशु किस नस्ल के होने चाहिए, व्यवसाय कितने पशुओ के साथ शुरू करना चाहिए, यदि पशु किसी बीमारी से ग्रस्त हो तो उन पशुओ का उपचार और पशुओ मे आने वाली बीमारी एवं उनका रोकथाम कैसे किया जाए आदि बिषय पर व्यवसाय शुरू करने से पूर्व किसान को पशु विशेषज्ञ से सलाह लेनी चाहिए।

दुग्ध उत्पादन व्यवसाय शुरू करने के लिए उपयुक्त स्थान का चयनः– दुग्ध उत्पादन शुरू करने के लिए एक साफ–स्वच्छ एवं बड़े स्थान की आवश्यकता होती है जहाँ पर पशुओं को रखा जा सके और दूध निकालने के उपरांत दूध का भंडारण किया जा सके। पशुओ के आहार (भूसा) को रखने के लिए एक बड़े कमरे की आवश्यकता होती है जंहा भूसे का भंडारण किया जा सके।

- यदि निवेश की मात्रा कम हो तो किसान इस व्यवसाय को अपने घर से भी शुरू कर सकता है।

दुग्ध उत्पादन व्यवसाय के लिए कर्मचारी का चयनः– दुग्ध उत्पादन व्यवसाय एक ऐसा व्यवसाय है जिस के लिए किसी विशेष प्रकार के प्रशिक्षण या तकनीकी शिक्षा की आवश्यकता नहीं होती है। लेकिन किसान, दुग्ध उत्पादन व्यवसाय के लिए ऐसे व्यक्ति का चयन अवश्य करे जिसे पशुओ से दूध निकालना एवं दुग्ध उत्पादन मे प्रयोग की जाने वाली मशीनों का संचालन उस कर्मचारी द्वरा किया जा सके।

दुग्ध उत्पादन व्यवसाय के लिए पशुओं का चयनः– भारत देश मे गाय एवं भैंस ही मुख्यतः दुग्ध उत्पादन के प्रयोग मे लाये जाते हैं जो कि दुग्ध उदत्पादन की दृष्टि से काफी लाभप्रद है और यदि इन पशुओं को सही खान–पान (आहार) का प्रबंध किया

*परास्नातक छात्र, **शोध छात्र, कृषि प्रसार शिक्षा विभाग, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या, उ.प्र.

जाय तो यह पशु काफी आधिक मात्रा मे दुग्ध उत्पादित करते हैं।

1. गाय की कुछ प्रमुख नस्लेः— दुग्ध उत्पादन व्यवसाय की दृष्टि से उपयुक्त गाय की स्वदेशी नस्ले — साहीवल, गिर, राठी और लाल सिंधी है एवं कुछ बिदेशी नस्ले है जो कि स्वदेशी गयो की तुलना मे काफी अधिक दुग्ध उत्पादन करती हैं, जैसे जर्सी, होल्स्टीन फिजियन एवं ब्राउनस्विस।

2. भैंस की कुछ प्रमुख नस्लेंः— भैंस की प्रमुख नस्लें — मुर्रा, जफरावादी, मेहसाना, भदावरी, नागौरी, सूरती आदि हैं। इनमे मुर्रा नस्ल सबसे अधिक दुग्ध उत्पादन के लिए जानी जाती है। जबकि भदावरी नस्ल सर्वाधिक वसा युक्त दुग्ध उत्पादन के लिए जानी जाती है इसके दूध मे लगभग 13 प्रतिशत तक वसा पाया जाता है।

बाजार की उपलब्धताः— दुग्ध उत्पादन व्यवसाय एक ऐसा व्यवसाय है जिसके बाजार की उपलब्धता बहुत अधिक है क्योकि भारत मे प्रत्येक परिवार के अंदर दूध वा दूध से संबन्धित उत्पादो का प्रयोग किया जाता है। भारत दुग्ध उपभोक्ता के अलावा दुग्ध निर्यातक भी है। अतः किसान को इस बिषय पर ज्यादा चिंता करने की जरूरत नहीं होती है।

उत्पादित दूध की मार्केटिंगः— किसान के लिए यह बहुत आवश्यक होता है कि वह उत्पादित दूध को अधिक से अधिक मूल्य पर बेच सके।

यदि किसान छोटे स्तर पर दुग्ध उत्पादन शुरू कर रहा है तो किसान को दूध खरीदने वाले ब्यापारियो से संपर्क कर लेना चाहिए या किसान चाहे तो स्वयं दुग्ध उत्पादन से संबन्धित कारखानो मे दूध ले जाकर बेच सकते हैं और अच्छा दाम प्राप्त कर सकते है। सीमांत एवं छोटे किसान अपनी खेती बाड़ी के साथ—साथ 4 —5 पशु रखकर मिश्रित खेती सिध्दान्त के अंतर्गत दुग्ध उत्पादन करके अच्छा लाभ प्राप्त कर सकते है।

किसान दुग्ध व्यवसाय मे निम्नलिखित प्रकार से अभियोजित होकर के उत्पादित दूध को उपभोक्ता मे वितरित करके अच्छा लाभ प्राप्त कर सकते है जैसेः—

(1) शहर के नजदीक वाले गाँव के किसान दूध का उत्पादन कर स्वयं ही शाहर जाकर घर—घर दूध का वितरण उपभोक्ता मे करके अपने दूध को दूधिया की अपेक्षा अधिक कीमत पर बेंच सकते हैं।

(2) गाँव के कुछ उत्पादक अपना दूध शहर ले जाकर घर—घर वितरित न करके एक साथ सारा दूध किसी हलवाई या डेयरी को बेंच देते है लेकिन इनको प्रथम श्रेणी के उत्पादको की तुलना मे कुछ कम कीमत प्राप्त होता है।

(3) जो किसान शहर के अधिक पास होते है वे किसान शहरी उपभोक्ताओ को अपना ग्राहक बना लेते हैं तथा शहरी उपभोक्ता समय—समय पर गाँव जा कर अपने सामने दूध निकलवा कर लाते है। इस वर्ग के उत्पादक दूध का काफी अच्छा मूल्य प्राप्त करते हैं तथा साथ—साथ उपभोक्ता को शुद्ध दूध प्राप्त हो जाता है।

(4) दूध के संग्रहण तथा वितरण कार्य मे आजकल कुछ निजी, सहकारी एवं सरकारी तंत्र सम्मिलित है। सहकारी तंत्र गाँव मे उत्पादको की समिति बना कर दूध एकत्रीकरण का कार्य करते है, संघ उस एकत्रित दूध को संसाधित करके वितरण करते है। इसमें उत्पादक को सामान्यतया अधिक मूल्य प्राप्त होता है।

दुग्ध उत्पादन का पर्याप्त लाभ पाने के लिए यह आवश्यक है कि प्रसंस्करण व वितरण साधन भीं विकसित किए जाये। चूंकि व्यक्तिगत किसान के लिए यह सम्भव नहीं है अतः कुछ उत्पादक एक साथ मिलकर एक संगठन बना ले और सामूहिक रूप से संग्रहण, प्रसंस्करण व वितरण के साधन सहकारिता के आधार पर विकसित करे। सहकारिता का लाभ उत्पादक व उपभोक्ता दोनों को मिलता है और उत्पादक को अपने उत्पाद का उचित मूल्य भी प्राप्त होता है क्योकि इस प्रणाली मे बाजार के मध्यस्तों के द्वरा दूध का वितरण नहीं होता है तथा मध्यजनों की संख्या कम होने से दूध के ऊपर होने वाला परिव्यय तथा मध्यजनों का मुनाफा कम हो जाता है और उत्पादक को काफी अच्छा मूल्य प्राप्त होता है।

कटहल की बागवानी, प्रसंस्करण व मूल्य संवर्धित उत्पाद द्वारा स्वांलम्बी बने कृषक महिलाएं

रेनू सिंह* एवं शैलेन्द्र कुमार सिंह**

इस समय बाजार में कटहल बहुतायत में उपलब्ध हैं। कटहल कच्चें रहने पर सब्जी के में तथा पक जाने पर फल के रूप में खाए जाते हैं। चूंकि यह दोनों ही रूपों में खाए जाते है, इसलिए सब्जी या फल कहना बहुत मुश्किल है। देश के पूर्वी क्षेत्र से लेकर पश्चिमी क्षेत्रों तक पाए जानें वाले कटहल की बहुउपयोगिता की जानकारी बहुत ही कम लोगों को है। कटहल बहुउपयोगी व गुणकारी होने के बावजूद व्यावसायिक रूप से व्यापक रूप में प्रयोग में नही लाया जाता। कटहल का सेवन बहुत ही गुणकारी है।

कटहल के गुण :–

1. इसके अन्दर कई पौष्टिक तत्व जैसे विटामिन ए. सी. थाईमिन, पोटैशियम, कैल्शियम, राइबोफ्लेविन, आयरन, जिंक और फाइबर इत्यादि पाया जाता है।
2. कटहल के गूदे को अच्छी तरह मसलकर पानी में उबालकर छानकर ठंडा करके पीने से ताजगी आती है। यह कैलोरी रहित होने पौटैशियम की वजह से दिल के रोगी के लिये फायदेमंद है। साथ ही उच्च रक्तचाप को कम करता है।
3. कटहल रेशेदार फल है इसमें आयरन पाया जाता है जो एनीमिया दूर करने और शरीर में रक्तसंचार बढ़ाता है।
4. कटहल वृक्ष की जड़ को पानी में उबालकर छानकर पीने से अस्थमा रोगी को फायदा होता है।
5. कटहल में मौजूद खनिज लवण और कापर थायराइड की समस्या दूर करते हैं। इसमें मौजूद मैग्नीशियम हड्डियों को मजबूत करने में सहायक होता है साथ ही आस्टिपोरोसिस की समस्या का बचाव करता है।
6. यह अल्सर, पाचन सम्बन्धी समस्या और कब्ज दूर करने में सहायक होता है।
7. यह आंखों की रोशनी में वृद्वि करता है। त्वचा निखारने में सहायक होता है। कटहल पक जाने पर पीले रंग का हो जाता है। जिसे सभी बड़े चाव से खाते हैं क्योंकि यह खाने में मीठा होता है और सुगंधित भी। कच्चे कटहल को काटने से पहले हाथ में सरसों का तेल लगाना चाहिए ताकि कटहल की डंठल में मौजूद दूध हाथ में चिपकने न पाए।

कटहलः– सब्जी, फल, पकौड़े, कटहल कोपता, कटहल चावल, बिरयानी, कटहल आलूदम इत्यादि के रूप में पूरे भारत में प्रचलित व प्रसिद्ध है। कटहल के प्रसंस्करण द्वारा ढ़ेरों उत्पाद बनाए जा सकते हैं इन्हे वर्ष भर सुरक्षित रखा जा सकता है। कटहल में मूल्य संवर्धन व प्रसंस्करण द्वारा कृषक व कृषक महिलाएं अतिरिक्त आय अर्जन कर सकते हैं

कटहल में विद्यमान पोषक तत्वः–

कटहल (1 कप कटा हुआ) :157 कैलोरी

वसा :1 ग्राम

कार्बोहाइड्रेट : 38 ग्रा0

प्रोटीन : 2.8 ग्रा0

विटाामिन सी : 22.6 मिली0 ग्रा0

रेशा : 2.5 ग्रा0

स्त्रोत : यू.एस.डी.ए

कटहल के उत्पाद

- कटहल का अचार कम तेल में।
- कटहल सिरके का अचार।

*विषय वस्तु विशेषज्ञ, गृह विज्ञान, **वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष, कृषि विज्ञान केन्द्र, हैदरगढ़ बाराबंकी, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या, उ.प्र.

- कटहल चाकलेट रोक।
- आटा
- पापड़
- जैम
- जैली
- आइसक्रीम

उपरोक्त विभिन्न उत्पाद बनाए जा सकते है चूंकि कटहल जल्दी खराब नही होता इसलिए इसे अच्छी तरह पैक कर दूसरी जगह भी भेजा जा सकता है। कटहल विश्व का सबसे बड़ा फल है। यह एक बहुवर्षीय , फैलाव वाला वृक्ष है।

इसकी बागवानी हेतु कृषक महिलाएं खेत की तैयारी इस प्रकार करें। :–

1. **कटहल हेतु मिट्टी का चयनः**– इसकी खेती सभी प्रकार की मिट्टी में की जा सकती लेकिन गहरी दोमट तथा बलुई दोमट मिट्टी इसकी बागवानी के लिए सबसे उपयुक्त है।
2. **खेत की तैयारीः**– कटहल के पौधे एवं बीज से रोपाई से पहले खेत को तैयार करने के लिए एक गहरी जुताई करने के बाद पाटा चलाकर भूमि को समतल कर 10 ये 12 मीटर की दूरी पर एकमीटर घेरा एवं एक मीटर गहराई के गढ़ढे तैयार करें।
3. **कटहल के पौधे व बीज लगाने का समयः**– जून से सिम्बर माह
4. **सिंचाईः**– बुआई से ही पौधों का 15 दिन के अन्तराल पर पानी देना चाहिए।
5. **कटहल में फल आने/लगने का समयः**– यह इसके किस्म पर निर्भर करती है कटहल के बीजू पौधे से 7 – 8 वर्ष में, कटहल के कलमी पौधे से 4 – 5 वर्ष में फल लगने शुरू हो जाते हैं।
6. **कटहल उपजः**– कटहल के फल लगने के 20 – 25 दिन बाद इसके एक पेड़ से 45 – 50 कि0 ग्रा0 फल सब्जी के लिए प्राप्त किया जा सकता है। इसकी प्रतिवृक्ष औसत ऊपज 300 – 500 कि0ग्रा0 है।
7. **कटहल की किस्मेंः**– सिंगापुरी, गुलाबी, रसदार, रूपाक्षी, खजवा इत्यादि हैं।

ध्यान देने योग्य बातेः– कटहल खाने के बाद दूध, पपीता, शहद का सेवन नही करना चाहिए। एलर्जी, दाद, खाज, खुजली एक्जिमा, सूजन की समस्या हो सकती है।

ग्रामीण महिलाएं कटहल की नर्सरी द्वारा, बागवानी द्वारा, फलत प्राप्त होने पर कटहल के प्रसंस्करण, मूल्य संवर्धित उत्पाद के विपणन द्वारा सशक्त व स्वालम्बी बन सकती है। यह आय का एक बेहतरीन साधन है। इसे अपनाएं व अपनी आय को दुगुना कर आर्थिक रूप से सुदृढ़ बनें।

(पृष्ठ 10 का शेष)

- कीट आकर्षित घास जैसे नेपियर घास एवं ब्राचियारिया घास व कीट प्रतिकर्षी घास जैसे डेस्मोडियम घास खेत के चारों तरफ लगाकर कीट से बचा जा सकता है।
- संतुलित उर्वरक का प्रयोग करें। नाइट्रोजन का प्रयोग अधिक न करें।
- लेडीबर्ड बीटल, इयरविग्स, शिकारी कीड़े, मिट्टी की सतह के भृंग, और चींटियों को शिकारियों के रूप में इस्तेमाल कर फॉल आर्मी वार्म का नियंत्रण किया जा सकता है।
- जैविक कीटनाशक जैसे बेसिलस थूरिनजिएन्सिस का 2 ग्राम / लीटर का छिड़काव कर कीट की रोकथाम कर सकते हैं।
- कीटनाशक इमामेक्टिन बेंजोएट 5 प्रतिशत एससी का 0.4 ग्राम प्रति लीटर पानी व क्लोरेण्ट्रानिलिप्रोल 18.5 प्रतिशत एससी की 0.3 मिली प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें। अधिक प्रकोप होने पर 10 दिन के अंतराल में दो से तीन छिड़काव करे।

थायोमेथोक्सोम 12.6 प्रतिशत. लेम्ब्डासायहेलोथ्रिन 9. 5ः जेडसी की 0.3 मिली मात्रा प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।

नर्सरी तालाब प्रबंधन

प्रमोद कुमार*, ए. पी. राव** एवं एस. के. वर्मा***

आज कल भाग–दौड़ की जिन्दगी मे मनुष्य को पौष्टिक एवं संतुलित भोजन नही मिल पाता है। जिसके कारण मानव विभिन्न बीमारियों का शिकार हो जाता है। इन बीमारियों मे प्रोटीन, विटामिन एवं खनिज लवणों की कमी से उत्पन्न होने वाले रोगों को मछली खाकर काफी हद तक ठीक किया जा सकता है।

अपने देश मे अभी भी मछली खाने वाले (56 प्रतिशत) लोगो के बीच इनकी उपलब्धता केवल 9 किलोग्राम प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष है। जबकि पोषण सलाहकार समिति के अनुसार मछली की उपलब्धता 31 किलोग्राम प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष होनी चाहिए।

अतः आवश्यकता है कि सुनियोजित एवं वैज्ञानिक विधि द्वारा मछली उत्पादन बढ़ाया जाय। मछली उत्पादन मे उत्तर प्रदेश का भारत मे चौथा स्थान है। जबकि प्रदेश के सभी गॉवों मे तालाब एवं पोखरे जिनकी संख्या लगभग 1.60 लाख हे0 है। इन तालाबों का व्यवहारिक रूप मे लगभग 50 प्रतिशत भाग ही मत्स्य पालन हेतु उपयोग मे है। जबकि प्रदेश मे कुल जल क्षेत्र 4.7 लाख हे0 है। जिसका वर्तमान उत्पादन लगभग 2900 किग्रा0 मछली प्रति हे0 प्रति वर्ष है। जो बहुत ही कम है। इस उत्पादन को बढ़ाने व रोजगार के अपार सम्भवनाऐं है।

मछली के उत्पादन मे मत्स्य बीज, भोजन एवं जलीय गुणवत्ता महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। उच्च गुणवत्ता के मत्स्य बीज का अभाव अत्यधिक या कम मत्स्य बीज का संचयन, अवांछनीय कीट व मछलियों का प्रकोप, मिट्टी, जल एवं भोजन का सही प्रबंधन न होना इत्यादि मछली उत्पादन मे कमी के प्रमुख कारण हैं। इस कमी को पूरा करने के लिए निम्न तरीके अपनाने चाहिए।

नर्सरी तालाबः– नर्सरी तालाब का उपयोग मछलियों के बहुत छोटे बच्चों (स्पान) को शिशुमीन (फ्राई) अवस्था तक लाने व सुरक्षा प्रदान करने हेतु किया जाता है जिससे स्वस्थ एवं पाली जाने वाली शुद्ध प्रजाति के मत्स्य बीज को तालाबों मे संचय कर मत्स्य उत्पादन बढ़ाया जाता है।

नर्सरी तालाब के आकार एवं प्रकारः– ऐसे तालाब जो गर्मियों मे प्रायः सूख जाते हों ज्यादा उपयुक्त माने जाते है। नर्सरी तालाब का क्षेत्रफल 0.02–0.06 हे0 (4 ग 1.5 ग 1.25) मीटर होता है। नर्सरी तालाब आयताकार तथा बाढ़ से प्रभावित नही होने चाहिए।,

तैयारीः– ऐसे नर्सरी तालाब जिनके अन्दर व किनारे पर जलीय व स्थलीय पौधे जैसे–जलकुम्भी, हाथीघास आइपोमिया, लेमना, एजोला, वैलिसनेरिया, गड़रा, सरपत आदि प्राकृतिक रूप से उग जाते हैं, जो विभिन्न प्रकार के कीड़ों को आश्रय देने के साथ संचित मत्स्य बीज को खा जाते हैं इन घासों को पूर्णरूप से जाल चलाकर सफाई कर देते हैं।

यदि नर्सरी तालाब मे अनावश्यक मछलियां एवं कीड़े जैसे–सिधरी, डिड़वा, गिरई, सौर, सौरी, सिंहीं, पहिन, भाकुर, झींगा, केकड़ा, कछुआ, जल विच्छू, जलीय खटमल, गोताखोर कीट आदि हो तो इस का पूर्ण निष्काशन निम्न दो विधियों द्वारा किया जाता है।

भौतिक विधिः– स्पान डालने से एक या दो दिन पूर्व महीन कपड़े के जाल से तालाब मे बार–बार चलाकर जलीय कीड़ो व आवांछनीय मछलियों को निकाल दिया जाता है।

रसायनिक विधिः– जाल चलाने के उपरान्त बचे हुए जलीय कीड़ो व आवांछनीय मछलियों को मारने के लिए विषैला पदार्थ जैसे–महुआ की खली 200 किग्रा0 प्रति हे0 की दर से प्रयोग करने से मछलियां 4–6 घंटो में मर कर पानी की उपरी सतह पर आ जाती हैं जिसे खाने के प्रयोग में लेते हैं , इसका विशैलापन तालाब मे लगभग पन्द्रह से बीस दिन तक रहता है।

इसके अलावा जलीय कीड़ो को मारने के लिए 18

*वि0 व0 वि0 (मत्स्य) कृषि विज्ञान केन्द्र , बलरामपुर, **निदेशक प्रसार, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या, उ.प्र., ***वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष, कृषि विज्ञान केन्द्र , बलरामपुर

किग्रा0 सस्ते साबुन तथा 56 किग्रा0 वनस्पतिक तेल को मिला कर प्रति हे0 की दर से नर्सरी तालाब मे छिड़काव ऐसे समय पर करते हैं, जब तेज हवा न चल रही हो। इससे पानी की ऊपरी सतह पर एक पतली तैलीय परत बन जाने से बचे हुए कीड़े ऊपरी सतह से श्वसन नही कर पाते हैं और कुछ ही घण्टों मे उनकी मृत्यु हो जाती है।

बीज संचयः– स्पान (जिनका आकार 0.6 – 0.75 सेमी, 0.0014 ग्राम भार) को प्रातः काल या सायं काल 1.5–2.5 मिलियन प्रति हे0 की दर से 2 – 3 सप्ताह के लिए नर्सरी तालाब में संचय कर देते हैं, पन्द्रह दिन के अन्तराल पर मत्स्य बीज फ्राई अवस्था (जिनका आकार 2–3.5 सेमी, 0.15– .75 ग्राम भार) मे पहुॅच जाते हैं। जिससे लगभग 87.3 प्रतिशत तक जीवित मत्स्य बीज दो से तीन सप्ताह मे प्राप्त हो जाते हैं।

मत्स्य आहारः– मछली के बच्चों को अधिक जीवित रखने के लिए तालाब मे कार्बनिक खाद जैसे–गोबर खाद, वर्मी कम्पोस्ट, नाडेप खाद आदि और बुझा चूना 10–15 टन प्रति हे0 की दर से प्रयोग कर प्राकृतिक रूप से प्लवक (जन्तु व वनस्पतिक) तैयार किया जाता है। इसके साथ–साथ कृतिम अहार जैसे मूंगफली या सरसो की महीन पिसी या छनी हुयी खली तथा चावल की पालिस (1:1) बराबर मात्रा मे मिलाकर पानी मे भिगो कर या पाउडर अवस्था में प्रतिदिन सुबह एवं शाम को एक निश्चित समय एवं स्थान पर पानी की सतह पर फैला दिया जाता है जिससे शिशुमीन आसानी से खा सके। तीन लाख प्रति हे0 स्पान के लिए पॉच दिनो मे मत्स्य बीज के वजन का चार गुना अगले छः से बारह दिनो मे प्रतिदिन की अवधि मे मात्रा दूनी कर देते हैं।

मत्स्य बीज स्थानान्तरणः– दो – तीन सप्ताह के मत्स्य बीज(2–3.5 सेमी0) को नर्सरी तालाब से प्रातः काल या सूर्यास्त से पूर्व इन्हे सूती कपड़े से बने महीन जाल जिसका मेस आकार 25–30 मिमी0 हो,द्वारा पकड़कर अंगुलिका अवस्था (फिंगरलिंग) तक बढ़ने के लिए पालन तालाब मे संचित कर कुल मत्स्य भार का 2–3 प्रतिशत दिया जाता है साथ – साथ इन्हे माइक्रोफाइट्स जैसे एजोला, वोल्फिया, लेमना आदि हरे चारे के रुप मे भी दिया जाता है जिन्हे मछलियां बड़े चाव से खाती हैं, नर्सरी तालाब से बीज को निकालने के एक दिन पूर्व अतिरिक्त भोजन नहीं देते हैं, अन्यथा फूले पेट होने के कारण इनके मरने की संभावना बढ़ जाती है।

यदि आकाश मे बादल छाये हों या तेज धूप हो तो इनके मरने की आशंका बढ़ जाती है।दूर ले जाने के लिए इन मत्स्य बीजों को हापो मे 3–6 घण्टों तक रख कर इनकी अवस्था (कन्डीशनिंग) मे रखते हैं।

देखभालः– समय–समय पर जाल चलाकर मत्स्य बीज के बढ़वार की जॉच करते रहना व लाल दवा का प्रयोग कर तालाब मे आक्सीजन की कमी व पैरासाइट से बचाया जाता है।

पूर्वाञ्चल खेती पढ़िये : खेती में आगे बढ़िये

- फसलोत्पादन, सब्जी उत्पादन, बागवानी, मत्स्य तथा पशुपालन विषय की वैज्ञानिक जानकारी देने वाली लोकप्रिय मासिक पत्रिका पूर्वाञ्चल खेती। चाहे प्रगतिशील किसान हों, बागवान हों या मत्स्य/पशुपालक, अनुसंधान/प्रसार कार्यकर्ता अथवा कृषि संकाय के छात्र तथा साथ ही साथ सभी के लिये उपयोगी आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या, की हिन्दी मासिक पत्रिका पूर्वांचल खेती।
- पूर्वाञ्चल खेती की सदस्यता शुल्क रु0 270.00 मात्र (किसानों, छात्रों एवं लेखकों के लिए रू0 220.00 मात्र) है। जो निदेशक प्रसार, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या को मनीआर्डर/नकद भुगतान द्वारा प्रेषित किया जाना चाहिए। सदस्यता शुल्क भेजते समय अपना नाम व पता स्पष्ट अक्षरों में लिखना न भूलें। आपका सुझाव उत्तरोत्तर सुधार हेतु प्रार्थनीय है।

गोवंशीय पशुओ में गिल्टी रोग (एंथ्रेक्स) का निदान, उपचार व बचाव के उपाय

डी. डी. सिंह* एवं ए. पी. राव*

गिल्टी रोग गोवंश में बैसीलस एन्थ्रेसिस नामक जीवाणुओं द्वारा उत्पन्न होता है तथा इस रोग की प्रमुख पहचान वृहदाकार, काली, नर्म तिल्ली और अधोत्वचीय रक्तस्राव व सूजन आदि है। हमारे देश के गोपालक भी गिल्टी रोग से भलीभाँति परिचित है। इस रोग से गोवंश की अचानक मुत्यु हो जाती है। रोगी गोवंश, खालों या बालों से इस रोग की छूत मनुष्यों में भी लग जाती है। अतः रोग का जन स्वास्थ्य की दृष्टि से भी बहुत अधिक महत्व है। इस रोग के जीवाणु को जैविक हथियार के रूप में भी प्रयोग किया जा सकता है।

कारण

रोग का कारण, बैसीलस एन्थ्रेसिस नामक जीवाणु है। ये जीवाणु गतिहीन, दण्डाणु तथा छोटी चेनों में होते हैं। जीवाणु ग्राम पोजीटिव, सम्पुट युक्त होते हैं तथा ये बीजाणु (स्पोर) का निर्माण करते हैं जोकि जीवाणु का बहुत अधिक प्रतिरोधी प्रकार है। जीवाणु वायुजीवी हेाते हैं और प्रयोगशाला के सामान्य माध्यमों में उगाए जा सकते हैं। इस जीवाणु के बीजाणु शुष्कता से भी प्रतिरोधी होता है। इसे 5 प्रतिशत फीनाल से मारा जा सकता है। त्वचा में नमक लगाकर बीजाणु को समाप्त नहीं किया जा सकता है। अतः मरे गोवंश की खाल निकालने वाले तथा चमड़े के सामानों से भी इस बीमारी का प्रकोप मनुष्य व अन्य गोवंश में हो सकता है।

रोग व्यापकीयता

गोवंश इस रोग के प्रति अधिक संवेदनशील होते हैं। गोवंश की खराब अवस्था, यात्रा में थकावट तथा खुरपका और मुँहपका रोग में तिल्ली ज्वर की संवेदनशीलता बढ़ जाती है। रोग का प्रकोप वर्षा तथा गीष्म ऋतु में मक्खियों व कीटों की बहुसंख्या गर्मी और अधिक नमी के कारण अधिक हो जाता है। रोग का संचरण संदूषित भोजन व पानी, दूषित मिट्टी, वनस्पतियों, काटने तथा रक्त चूसने वाले कीटों, मांसाहारी पक्षियों एवम् गोवंश द्वारा होता है। गोवंश में इस रोग का संचरण श्वसन द्वारा भी हो सकता है। रक्त, अस्थि मल तथा बहती हुई पानी की धारा द्वारा भी रोग एक से दूसरे गोवंश में होता है।

लक्षण

गिल्टी रोग मुख्यतः दो प्रकार का होता हैः

अति तीव्र गिल्टी रोगः इस प्रकार की बीमारी में गोवंश अचानक मृत पाया जाता है। मुँह, नाँक, गुदा तथा भंगद्वार से झागयुक्त काला रक्त निकलता है। गोवंश का पेट फूल जाता है तथा शव शिथिल ही रहता है एवं अकड़ता नहीं है। प्रमुख लक्षण माँसपेशियों में कम्पन, दाँत किटकिटाना, आँखों का घूमना, कठिन श्वसन तथा गोवंश की मृत्यु होना हैं।

तीव्र गिल्टी रोगः इस प्रकार की बीमारी में रोग काल 1–2 दिनों तक का होता है। अधिकाँश गोवंश में जहरवाद के लक्षण मिलते हैं। इसमें सामान्यरूप से तीव्र ज्वर 105–1070फा. तापमान, सुस्ती, गरदन तथा कान लटकना, माँसपेशियों में कम्पन, तेज नाड़ी तथा श्वाँस, दुग्ध उत्पादन में कमी, कब्ज तथा इसके पश्चात् पेचिश या दस्त उत्पन्न हो जाते हैं। गोवंश में गिल्टी रोग का समय 10 से 24 घंटों के मध्य रहता है। गोवंश अत्यधिक उत्तेजित होकर रंभाते हैं, भोजन के प्रति अरूचि रहती है तथा जुगाली नहीं करते हैं। गर्दन, वक्ष, फ्लैंक, पीठ इत्यादि में सूजन उत्पन्न हो जाती हैं। आंत्रशोथ तथा खूनी दस्त भी उत्पन्न हो जाते हैं। जुबान तथा मलाशय की श्लेष्मी दीवार में भी सूजन उत्पन्न हो जाती है तथा वहाँ से रक्त्स्राव होता है।

कम तीव्र प्रकार गिल्टी रोगः इस प्रकार का गिल्टी रोग प्रकोप के अन्त में उस गोवंश को होता है जिनमें गिल्टी रोग के लिए कुछ प्रतिरोधी क्षमता उत्पन्न हो जाती है। ऐसे ही कुछ बीमार गोवंश रोग वाहकों का भी कार्य कर सकते हैं।

*एसोसिएट प्रोफेसर (पशु रोग विज्ञान), **निदेशक प्रसार, प्रसार निर्देशालय, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या, उ.प्र.

विकृति

जीवाणु गोवंश के शरीर में बीजाणु (स्पोर) के रूप में प्रविष्ट होता है तथा शरीर में ही बीजाणु का अंकुरण होता है। जीवाणु के चारों ओर सम्पुट का निर्माण होता है, जोकि भक्षण कोशिका द्वारा नष्ट होने से जीवाणु को बचाता है। यह सम्पुट रक्त का थक्का बनने को रोकता है। इससे जीवाणुओं को फैलने में मदद मिलती है। कीटों द्वारा उत्पन्न संचरण में जीवाणु वेजीटेटिव प्रकार में होता है। रक्त प्रवाह में जीवाणु प्रविष्ट होकर तीव्रता से विभाजित होता है तथा इस प्रकार का विष उत्पन्न करता है जो सूजन और रक्तस्राव के लिए उत्तरदायी हैं। गिल्टी रोग से मृत गोवंश का शव परीक्षण करने पर सूजन तथा रक्तस्राव के क्षत स्थल मिलते हैं। आक्सीजन की न्यूनता के कारण रक्त गहरे रंग का होता है। गोवंश की मृत्यु ग्लूकोज कम होने तथा सांस में बाधा पड़ने के कारण होती है। मृत गोवंश का शरीर अकड़कर कडा नहीं होता जैसा कि सामान्य रूप से देखा जाता है, बल्कि शिथिल ही पड़ा रह जाता है। ऐसे रोग से मरे गोवंश का शव परीक्षण व शव विच्छेदन नहीं करना चाहिए।

निदान

रोग का इतिहासः संवेदनशील गोवंश की अचानक मृत्यु हो जाना तथा नांक और मुँह से काले रंग का थक्के न पड़ने वाला रक्त निकलना, अफारा, शव में अकड़न न होना आदि से रोग का संदेह किया जा सकता है। इस रोग से मृत गोवंश के शरीर को नहीं खोलना चाहिए। अतएव शव परीक्षण नहीं करना चाहिए।

रक्त का परीक्षणः मृत गोवंश के रक्त की स्लाइड बनाकर ग्राम्स विधि द्वारा रंगकर परीक्षण किया जाता है। रक्त में छोटे–छोटे चेनों मे ग्राम पोजीटिव दण्डाणु मिलते हैं। रक्त का नमूना कान की शिराओं से लिया जा सकता है। यह रक्त परीक्षण शव खोलने से पहले ही कर लेना चाहिए। यदि पशु में गिल्टी रोग के जीवाणु मिलते हैं तो शव परीक्षण नहीं करना चाहिए। क्योंकि शव खुलने पर ये जीवाणु वातावरण में अपने आप को बचाये रखने के लिए बीजाणु बना लेते हैं जो कई वर्षों तक जीवित रहते हैं व बार–बार संक्रमण का कारण बनते हैं।

गिनीपिग तथा मूशक इनाकुलेशन परीक्षणः संदिग्ध पदार्थ को पीस करके मूशकों या गिनीपिगों में इनाकुलेट किया जाता है तथा जीवाणुओं का पृथक्कीकरण किया जाता है। मूशका में 24 घंटों तथा गिनीपिगों में 48 घंटों में परिणाम मिल जाता है। ऐसे गोवंश की कान की नोक पर उगे बालों को काटने के पश्चात् सफाई करना चाहिए। मृत गोवंश के कान की थोडी सी त्वचा काट देना चाहिए तथा घाव से निकलने वाले रक्त का परीक्षण करना चाहिए।

प्रयोगशाला में निदान हेतु निम्नलिखित नमूने/पदार्थ भेजे जाते हैः

1. रक्त का स्लाइड पर स्मीयर बनाकर
2. शीशी में रक्त लेकर उसे बर्फ में रखकर भेजना चाहिए।
3. ऊतकों जैसे कि हृदय, तिल्ली या जिगर को बर्फ में भेजना चाहिए।
4. कान के एक टुकड़े को स्वच्छ रूई में लपेट कर भेजा जा सकता है।

गिल्टी रोग निदान हेतु जो भी पदार्थ प्रयोगशाला भेजा जाए वह बहुत अच्छी प्रकार से पैक किया जाए तथा न टूटने वाले बरतन में होना चाहिए। पैकिंग पर अच्छी प्रकार से लिखा होना चाहिए और सीधे प्रयोगशाला प्रेषित करना चाहिए।

उपचार

मनुष्य और गोवंश में गिल्टी रोग का उपचार ऐटिएंथ्रेक्स सीरम तथा जीवाणुनाशक औषधियों द्वारा किया जाता है। लगभग 100 मि.ली. ऐन्टीएंथ्रेक्स सीरम अंतः शिरा विधि द्वारा दिया जाता है। यदि प्रारम्भिक मात्रा 250 मि.ली. कर दी जाए तो अधिक लाभ होता है। पेन्सिलीन की दस लाख इकाई प्रतिदिन देने से 1–2 दिन में लाभ होता है। टेरामाईसिन तथा सिप्रोफ्लोक्सिन द्वारा भी लाभप्रद परिणाम प्राप्त होते हैं। गिल्टी रोग का टीका और पेन्सिलीन तथा औरियोमाइसिन मिश्रण से बहुत अच्छे परिणाम प्राप्त होते हैं।

बचाव एवं रोकथाम

गिल्टी रोग के बचाव हेतु अनेकों जैव उत्पाद उपलब्ध

(शेष पृष्ठ 27 पर)

जुलाई माह में किसान भाई क्या करें

मृदा एवं उर्वरक प्रबंध
प्रो० आर.आर. सिंह, मृदा विज्ञान

1. सुगन्धित धान की रोपाई के लिये खेत की अच्छी तरह तैयारी कर लें व लगाने के बाद नत्रजन की आधी मात्रा तथा फास्फोरस व पोटाश की पूरी मात्रा पाटा देने से पहले खेत में डालें।
2. एक स्थान पर 1–2 पौध, पौध से पौध 10 सेमी0 तथा लाइन से लाइन 20 सेमी0 की दूरी पर रोपाई करें। रोपाई के एक सप्ताह बाद रिक्त स्थानों को उसी प्रजाति के पौध से भरें।
3. यूरिया की टाप ड्रेसिंग के पूर्व खेत से पानी निकाल दें। नमी अधिक होने या जल भराव की दशा में यूरिया को दोगुनी मिट्टी में एक चैथाई गोबर की खाद के साथ मिलाकर गोली बनाकर कर प्रयोग करें अथवा नीम कोटेड यूरिया का प्रयोग करें। सूखे की दशा में यदि नत्रजन की आवश्यकता हो तो दो प्रतिशत यूरिया घोल का पर्णीय छिड़काव करें।
4. रोपाई के 3–4 दिन के अंदर खरपतवार नाशी दवा सैटर्न 50 ईसी 3 लीटर की दर से चौड़ी पत्ती के लिये 2–4 डी सोडियम साल्ट का 400–500 ग्राम (सक्रिय) अथवा ब्यूटाक्लोर 50 ईसी 3 से 4 ली0 प्रति हे0 600–800 ली0 पानी में घोल बनाकर फ्लेटफैन नाजेल से पर्णीय छिड़काव करें।
5. मक्का की संकर संकुल प्रजातियों के लिये क्रमशः 120:60:60 व 80:40:40 तथा देशी प्रजातियों के लिये 60:30:30 किग्रा0 नत्रजन की आधी तथा फास्फोरस व पोटाश की पूरी मात्रा बुवाई के समय कूडों में बीज के नीचे डालें।
6. संकर व संकुल मक्क को 60 सेमी की दूरी तथा देशी प्रजाति को 45 सेमी की दूरी पर लाइन बनाकर बुवाई करें।
7. जायद उर्द व मूंग की तुड़ाई करके इसे मिट्टी में मिलाकर लेव लगाकर धान की रोपाई यथाशीघ्र सुनिश्चित करें।
8. अगेती अरहर की किस्में शरद–11, टा–21, उपास आदि की बुवाई 30–45 सेमी की दूरी पर करें। अरहर के साथ उर्द, मूंग, सोयाबीन, तिल आदि की सहफसली खेती करें।
9. मूंगफली जी की उन्नत किस्मों की बुवाई पंक्ति से पंक्ति 30–45 सेमी की दूरी पर बीज शोधन के बाद करें।
10. जस्ते की कमी वाले क्षेत्रों में फसल लगाने से पूर्व खेत की तैयारी के समय 25 किग्रा प्रति हे0 की दर से जिंक सल्फेट का प्रयोग करें

फसलों में
डॉ. सौरभ वर्मा
विषय वस्तु विशेषज्ञ (सस्य)

1. धान की सिंचित दशा में अधिक उपज देने वाले प्रजातियों के लिए 20:50:50 किग्रा एवं स्थानीय प्रजातियों के लिए 60:30:30 किग्रा प्रति हेक्टेयर नत्रजन की आधी एवं फास्फोरस तथा पोटाश की पूरी मात्रा रोपाई के पूर्व दें।
2. धान की असिंचित दशा में 60:40:30 किग्रा प्रति हेक्टेयर नत्रजन, फास्फोरस एवं पोटाश बुवाई के समय बीज के नीचे कूड़ों में प्रयोग करें।
3. रोपाई के 3–4 दिन बाद खर–पतवारनाशी दवा सैटर्न 50 ई सी. 3 लीटर की दर से या अन्य खर–पतवारनाशी जैसे 2, 4 डी. सोडियम साल्ट का 400–500 ग्राम (सक्रिय रसायन) अथवा ब्यूटोक्लोर 50 ई सी. 3 से 4 लीटर प्रति हेक्टेयर 600–800 लीटर पानी में घोल कर छिड़काव करें।
4. उर्द, मूँग के फलियों की तोड़ाई अवश्य कर लें। अन्तिम तोड़ाई के बाद मिट्टी पलटने वाले हल से जुताई कर दें।
5. तिल की संस्तुत प्रजातियों की बुवाई 45 सेमी पंक्ति की दूरी पर करें।
6. जस्ते की कमी वाले क्षेत्रों में धान की फसल पर 5 किग्रा जिंक सल्फेट को 2 प्रतिशत यूरिया के साथ अथवा 25 किग्रा बुझे हुये चूने के साथ पानी में मिलाकर प्रति हेक्टेयर छिड़काव करें।
7. मक्का में खरपतवारों को नष्ट करने के लिये सीमाजीन 50 प्रतिशत अथवा एट्राजीन 50 प्रतिशत की 2 किग्रा मात्रा को 800 लीटर पानी में घोलकर बुवाई के दूसरे या तीसरे दिन अंकुरण से पूर्व प्रति हेक्टेयर छिड़काव करें।

संकलनकर्ता : डॉ. आर.आर. सिंह, प्राध्यापक, प्रसार निदेशालय, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या, उ.प्र.

सब्जी एवं उद्यान में
डॉ० शशांक शेखर सिंह
विषय वस्तु विशेषज्ञ (उद्यान)

1. वर्षाकालीन प्याज की किस्म एग्रीफाउन्ड डार्क रेड या एन.–22 की 8–0 किग्रा बीज प्रति हेक्टेयर की दर से नर्सरी में बुवाई करें। अच्छे जल निकास के लिये क्यारी 5 सेमी जमीन से ऊँची बनायें।
2. अगेती फूलगोभी पूसा दीपाली की पौध इस माह के प्रथम सप्ताह में डालें। 250 ग्राम बीज एक एकड़ के लिये पर्याप्त होगा।
3. अगेती टमाटर एच एस –0 ।, पूसा रूबी तथा पूसा अर्ली प्रजातियों की पौध इस माह में डालें। बीज की मात्रा प्रति एकड़ गोभी के समान रखें।
4. लम्बे बैंगन पी एच –4 , पन्त सम्राट तथा गोल बैंगन पन्त ऋतुराज एवं टा–3 की पौध डाल सकते हैं।
5. लता वाली सब्जियों जैसे तरोई, नेनुआ, लौकी, बारहमासी करेला की बुवाई कर सकते हैं। मचान बनाना आवश्यक है।
6. भिन्डी , लोबिया आदि की बुवाई कर सकते हैं।
7. आम, अमरूद, नींबू पपीता, बेर, बेल एवं आँवला आदि के बाग लगाने के लिये उचित दूरी पर रेखांकन करके गड्ढों की खुदाई एवं भराई का कार्य पूर्ण कर लें।
8. बेर की कटाई एवं छटाई का कार्य सम्पन्न कर लें तथा खाद एवं उर्वरक का प्रयोग करें।
9. यदि किसी पौधे में मूलवृंत से फुटाव आ रहा हो तो उसे तत्काल निकाल दें और यदि सम्भव हो तो नये रोपित पौधों को सहारा दें।
10. सभी फल वृक्षों के पास 5–20 सेमी तक मिट्टी चढ़ा दें ताकि तने के पास पानी न लगे।

पौध संरक्षण में
डॉ० वी0पी० चौधरी एवं डॉ0 पंकज कुमार
विषय वस्तु विशेषज्ञ (फसल सुरक्षा)

1. धान की नर्सरी में खैरा या सफेदा रोग दिखाई दे तो खैरा रोग का नियन्त्रण 5 किग्रा जिंक सल्फेट. 25 प्रतिशत यूरिया या 25 किग्रा बुझा हुआ चूना से तथा सफेदा रोग का नियन्त्रण 25 किग्रा फेरस सल्फेट. 2 प्रतिशत यूरिया का छिड़काव प्रति हेक्टेयर के हिसाब से करें।
2. धान की बुवाई के तुरन्त बाद खरपतवारों के नियन्त्रण हेतु ब्यूटाक्लोर 50 ई सी. 3–4 लीटर 600–800 लीटर पानी में घोलकर बुवाई के 3–4 दिन के अन्दर प्रति हेक्टेयर छिड़काव करें।
3. बोई जाने वाली सब्जियों का बीज शोधन (2.5 ग्राम डाईथेन एम–45 प्रति किग्रा) करने के बाद बोयें।
4. बेल वाली सब्जियों पर फल मक्खी का नियन्त्रण 5 लीटर मैलाथियान प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करें।
5. खर्रा रोग के नियन्त्रण के लिये घुलनशील गंधक 03 प्रतिशत घोल कर छिड़काव करें।

पशुपालन में
डॉ. एस.एन. लाल
सह प्राध्यापक (पशु विज्ञान)

1. जो किसान भाई अभी तक मीठी सूडान, एम.पी. चरी, बाजरा तथा लोबिया की बुवाई न किये हों, इस माह के अन्त तक अवश्य कर दें।
2. दुधारू पशुओं को पीने के लिये स्वच्छ व ताजा पानी दिन में कई बार दिया जाय। गर्मी से बचाव हेतु दोपहर के पानी में गुड़ अथवा इलेक्ट्राल दें।
3. पोषक तत्वों की पूर्ति हेतु पशुओं को संतुलित आहार (रातिब) अवश्य दिया जाय।
4. जिन पशुओं को अभी तक गलाघोटू बीमारी का टीका न लगा हो, उन्हें टीकाकरण करा दें।
5. अण्डा तथा मांस उत्पादन करने वाली मुर्गियों से अनुत्पादक मुर्गियों की छटनी कर दें।
6. जो भेड़, बकरी गर्मी में आयी हों उन्हें गर्भित करा दिया जाय।
7. दुधारू पशुओं को उनके उत्पादन क्षमता के अनुसार सन्तुलित आहार दें, जिसमें भैंस को दो से ढाई लीटर दूध देने पर तथा गाय को तीन लीटर दूध देने पर प्रति किग्रा पशु आहार देना आवश्यक है।
8. मुर्गियों को जानलेवा बीमारियों से बचाव हेतु उनके उम्र के अनुसार टीकाकरण कराना चाहिए , जिसमें रानीखेत बीमारी से बचाव हेतु एक से पाँच दिनों के बीच रानीखेत एफ– । तथा 6 से 8 सप्ताह के उम्र पर एफ–2 का टीका लगवाना चाहिए।

प्रश्न किसानों के, जवाब वैज्ञानिकों के

प्रश्न : मोथा घास का निदान कैसे करें?
(श्री उमेश चन्द्र यादव, रूदौली, जनपद–अयोध्या)

उत्तरः मोथा घास के नियन्त्रण के लिये खेत की ग्रीष्मकालीन 2–3 बार जुताई करें। खरीफ में धान उगाने के लिये लेवा करके अकुरित बीज बोये अथवा पौध रोपें। धान, मक्का, गन्ना, ज्वार तथा बाजरा की शुद्ध फसल मे संस्तुति के अनुसार 2 4–डी शाकनाशी का प्रयोग करें। वर्षा और ग्रीष्मकाल में सघन उगने वाली और जल्दी बढ़ने वाली फसलें लगाना अच्छा होगा। प्रत्येक फसल में बुवाई के बाद 5–20 दिन की अवस्था पर पहली निराई तथा इतने ही अन्तर पर दूसरी निराई अवश्य करें। बाद की निराई आवश्यकतानुसार करें। निराई–गुड़ाई के समय इस घास को समूल निकालकर नष्ट कर दें। बिरल या अधिक फासले पर लगाई जाने वाली फसलो में गन्ने की पत्ती, पुआल अथवा जलकुम्भी बिछाने से बहुत अच्छे परिणाम मिले हैं। गेहूँ, धान आदि फसल की एक माह की अवस्था पर वासाग्रान 2 लीटर प्रति हेक्टेयर 500–600 लीटर पानी में घोलकर छिड़कने से मोथा के साथ–साथ अन्य दूसरी घासे भी नष्ट हो जाती है।

प्रश्न : धान की फसल में दीमक लग जाते हैं, कृपया इसके रोकथाम के उपाय बतायें ?
(श्री संतोष कुमार, ग्राम–अमानीगंज, जनपद–अयोध्या)

उत्तरः दीमक जड़ एवं तने को खाकर सुखा देते हैं। प्रकोपित सूखे पौधों को आसानी से उखाड़ा जा सकता है। फसल बोने से पूर्व ऐसे क्षेत्रों में कच्चे गोबर की खाद का प्रयोग न करें, फसल के अवशेष को नष्ट कर दें। प्रकोप होने पर सिंचाई के पानी के साथ क्लोरपाइरीफास 20 ई सी 25 लीटर प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग करें।

प्रश्न : मुर्गीपालन प्रारम्भ करना चाहते हैं, कैसे करें?
(श्री गिरिराज वर्मा, बीकपुर, जनपद–अयोध्या)

उत्तरः मुर्गीपालन दो प्रकार से किया जाता है एक अण्डा उत्पादन के लिये, दूसरा मांस (ब्रायलर) उत्पादन। अण्डा उत्पादन हेतु सबसे अच्छी नस्ल ह्वाइट लेगहार्न पायी जाती है जो वर्ष भर में लगभग 280–300 अण्डे का उत्पादन करती है। इसके लिये बिछावन पद्धति और केज में मुर्गियों को पाला जाता है। दूसरा ब्रायलर पालन जिसे पूर्वांचल में बहुत से किसानों द्वारा किया जा रहा है। यह बहुत कम समय में अर्थात 35–40 दिन में 800–2000 ग्राम वजन तक हो जाता है जिसे बाजार के आवश्यकता अनुसार बेच दिया जाता है। ब्रायलर पालन के लिये जहाँ मुर्गी घर बनाना है वह जगह ऊँचा होना चाहिये, पानी न रूकता हो, बाजार के नकदीक तथा आने जाने के लिये सड़क होना आवश्यक है। एक ब्रायलर के लिये एक वर्गफुट स्थान की जरूरत पड़ती है जिसे अच्छे प्रबन्धन एवं सन्तुलित आहार खिलाकर कम समय में अधिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है। अधिक जानकारी के लिये आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज के कृषि तकनीकी सूचना केन्द्र पर आकर सम्पर्क कर सकते हैं।

(पृष्ठ 24 का शेष)

है। बहुत अधिक समय तक पास्चर द्वारा बनाये गये टीके का उपयोग किया जाता रहा है। तथा इससे बहुत अच्छे परिणाम प्राप्त होते हैं। निम्नलिखित जैव उत्पादकों का उपयोग किया जाता है।

1. ऐन्टी–एन्थ्रेक्स सीरमः इससे तीव्र परन्तु संक्षिप्त प्रतिरक्षा प्राप्त होती है। इसे रोगी जानवर को देने से रोग की तीव्रता कम हो जाती है।
2. एंथ्रेक्स स्पोर वैक्सीनः इसकी एक मात्रा का उपयोग किया जाता है। इस टीके को लगाने से गोवंश में रोग नहीं होता है।

जनस्वास्थ्य पर प्रभाव

मनुष्यों में गिल्टी रोग से त्वचीय, फेफड़ों तथा आंतो के रोग उत्पन्न हो जाते है। मनुश्यों में गिल्टी रोग एक व्यवसायिक रोग है। यह रोग अधिकतर कृषकों, बाधिकों तथा पशु चिकित्सकों को होता है, जो कि गोवंश की खाल, बाल, हड्डियों या रोगी गोवंश के संपर्क में आते हैं। मनुष्यों में एंथ्रेक्स का त्वचीय प्रकार रोग अधिक होता है, जिसमें हाथों, सिर, गर्दन में घातक घाव निकल आते हैं। मनुष्यों में यदाकदा आंत्रीय प्रकार का गिल्टी रोग भी हो सकता है। दूसरे प्रकार में फेफड़ों में क्षतियाँ उत्पन्न होती हैं।

पंजीयन संख्या - 54461/91

डाक पंजीयन संख्या एल. डब्लू./एन.पी. 34

प्रसार निदेशालय

आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय

कुमारगंज, अयोध्या – 224 229

द्वारा

कृषि तकनीकी सूचना केन्द्र

के अन्तर्गत प्रकाशित ग्रामोपयोगी पुस्तकें

पुस्तक	मूल्य रु.
आधुनिक मधुमक्खी पालन एवं प्रबन्ध	20.00
जिमीकन्द की खेती	15.00
मशरूम उत्पादन एवं उपयोगिता	12.00
किसानोपयोगी फसल सुरक्षा तकनीक	50.00
फसल उत्पादन तकनीक	35.00
जीरो टिल सीड कम फर्टी ड्रिल	10.00
फल–सब्जी परीरक्षण एवं मानव आहार	50.00
गन्ने की आधुनिक खेती	15.00
जीरो टिलेज गेहूँ बुवाई की एक विश्वसनीय तकनीक	20.00
केचुआ पालन (वर्मीकल्चर) एवं वर्मी कम्पोस्ट उत्पादन	10.00
व्यावसायिक कुक्कुट (ब्रायलर) उत्पादन	20.00
फसलों के सूत्रकृमि रोग एवं उनका वैज्ञानिक प्रबन्धन	25.00
आय संवर्धन हेतु प्रमुख सब्जियों की उत्पादन तकनीक	25.00
गृहणियों के लिए बेकिंग कला	25.00
स्वच्छ दूध उत्पादन तकनीक एवं उसका महत्व	20.00
गायों एवं भैसों के मुख्य रोग, टीकाकरण एवं संतुलित पशु आहार	20.00
मछली पालन	40.00
फसल अवशेष प्रबंधन	30.00

प्रति रूपये 25/–मात्र

मुद्रित

सेवा में,
श्री/श्रीमती

प्रेषक:
प्रसार निदेशालय
आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय
कुमारगंज, अयोध्या – 224 229

आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या की ओर से प्रो. ए.पी. राव निदेशक प्रसार द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित